स वैदिक धर्मके

प और निःशंय-

तंद बढाता है।

बौद्धिक और
आत्मिक उन्नतिके सच्चे मार्ग बताता है।

(५) "वैदिक धर्म" वैयक्तिक, सामुदायिक, जातीय, राष्ट्रीय तथा मानवी उत्कर्षके शुद्ध उपदेश प्रकाशित करता है।

(६) किसी प्रकारके कठिन समयमें आप "वैदिक धर्म" के विचार पढेंगे तो आपकी उदासीनता दूर होगी, और सच्चा नवजीवन प्राप्त होगा।

इसका वार्षिक मूल्य ३॥) साडे तीन रु है। विदेशके लिये ४॥) रु. है। आप शीघ्र ग्राहक बन जाइए और अपने मित्रोंको ग्राहक बननेकी प्रेरणा कीजिये॥

योग साधन माला । पंचम पुस्तक ।

योगसाधन की तैयारी ।

इसमें निम्नलिखित निबंध हैं । (१) अवैतनिक महा वीरोंका स्वागत, (२) योगका सामान्य स्वरूप, (३) विघ्नों का विचार, (४) तपका अभ्यास, (५) पृष्ठवंशका महत्व, (६) सब शक्तियोंका योग, (७) प्रसन्नता का साधन, (८) सहजवृत्ति, (९) प्राणायामसे लाभ, (१०) प्राणायामकी विशेषता, (११) आसन और प्राणायामका अनुभव, (१२) ब्रह्मचर्यका वायुमंडल.

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

द्वितीय वार २०००

संवत १९८०, शक १८४५, सन १९२३

हमारी शक्तिका विकास।

"**योग-साधन**" से हमारी शक्ति बढ़ती है। इसलिये योग विषयक अत्यंत आवश्यक बातोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया है। आशा है कि "**योगसाधन**" करनेवालों को इससे लाभ होगा।

औंध (जि. सातारा)
१ चैत्र १९८०

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल

ॐ
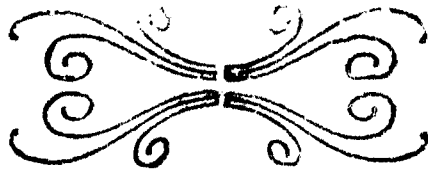
अवैतानिक महावीरोंका स्वागत ।

मैं राजा हूं, मैं महाराजा हूं, मैं अधिपति हूं, मैं सम्राट् हूं, मैं स्वराट् हूं, मैं विराट् हूं, ऐसा यदि कोई मनुष्य कहने लगा, तो सब उसको पागल अथवा मूर्ख कहने लग जांयगे । परंतु विचार करना है कि क्या यह सत्य नहीं है ? प्रिय पाठको ! आप भी विचार कीजिए कि आपमेंसे प्रत्येक सज्जन राजा और महाराजा वास्तवमें है वा नहीं ?

आप कदाचित् पूछेंगे कि यदि हम राजे महाराजे और सम्राट् हैं, तो हमारा राज्य और साम्राज्य कहां है ? राज्यके विना राजा नहीं हो सकता, तथा साम्राज्यके विना सम्राट् भी नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है, कि हरएक मनुष्य राजा, महाराजा और सम्राट् कैसे हो सकता है ? कई राजे होंगे, । उनसे कम महाराजे होंगे और सम्राट् तो संख्यामें सबसे कमही होंगे । इसलिये यह कभी नहीं हो सकता कि हरएक मनुष्य सम्राट् बन जाये ! !

परंतु " वैदिक धर्म " की बातही और है । यहा ऐसी व्यवस्था है कि हरएक मनुष्य सम्राट् बन सकता है । सम्राटोंको उत्पन्न करनेवाला यह " वैदिक धर्म " है । यदि आप सम्राट् बनना चाहते हैं तो आपको अर्थात् आपमेंसे हरएकको साम्राज्य

अर्पण करनेका सामर्थ्य " वैदिक धर्म " में है । यह साम्राज्य छोटा नहीं होगा परंतु जितना चाहे उतना विस्तृत और प्रचंड साम्राज्य आपमेंसे हरएकको मिल सकेगा।

यह कैसे हो सकता है इसका विचार करना है । राज्यके विना राजा नहीं हो सकता है यह बात सच है; परंतु यहां ऐसी अवस्था है, कि हम अपना राज्य, महाराज्य अथवा साम्राज्य होते हुए भी कंगाल बने हैं ! अपने राज्यके हम ही स्वामी हैं, परंतु उसको दूसरोंके आधीन करनेके कारण हमारी यह ऐसी अवस्था बन गई है । परंतु कोई सोचता नहीं ! ! !

जिसको अपनी शक्तिका पता लगा है, उसको " स्वराज्य " प्राप्त करनेमें देरी नहीं लग सकती । मनुष्य कैसी भी पराधीन अवस्थामें पहुंच गया हो, वह उसी समय पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर सकता है कि जिस समय उसको अपने आत्मिक बलका ज्ञान होता है । अपने सामर्थ्यका प्रभाव विदित होनेके पश्चात् कोई भी पराधीनतामें नहीं रहेगा और उसको कोई भी परतंत्र नहीं कर सकेगा।

पराधीनता तब तक रहती है कि जबतक हरएक अपने आपको हीन और दीन समझता है। जो अपने आपको हीन और दीन समझता है, उसको कौन उठा सकता है !! जो सचमुच अपने आपको दिलसे कमजोर मानता और समझता है, वह अपनी पराधीनताकी शृंखला स्वयं अपने हाथोंसे बनाता है और अपने पावोंमें धारण करता है !!

पाठको ! आप सम्राट् होते हुए साधारण कैदी के समान अपने आपको परतंत्र क्यों मानने लगे हैं ? आपको किसी दूसरेनें कैदी

नहीं बनाया है। स्वयं अपनेही विचारोंसे और अपनेही प्रयत्नोंसे आप कैदमें गये हैं और पराधीन बने हैं !! और जब कभी आपकी मुक्ति होगी तब आपको कोई दूसरा स्वतंत्र नहीं कर सकेगा, जब-तक आपको ज्ञानसे वैसा अनुभव नहीं होगा। अर्थात् **आपके बंधनके लिये तथा आपकी स्वतंत्रताके लिये आपका मन ही कारण** है। अर्थात् आपके विचार जैसे होंगे वैसे आप बन सकते हैं।

तात्पर्य राजा बननेके आपके विचार होंगे तो आप राजा बन सकते हैं, और सम्राट् बननेका आपका विचार होगा तो आप सम्राट् भी बन सकते हैं। न आपको कोई पराधीन रख सकता है और न आपको कोई स्वतंत्र कर सकता है। "**आप ही आपके शत्रु और आपही अपने मित्र हैं।**" आपही अपने तारक और आपही अपने मारक हैं। आपही स्वयं अपने उद्धारक हैं और आपही अपने पतनके कारण हैं। दूसरा कोई आपको कभी गिरा नहीं सकता और न ऊपर उठा सकता है। फिर मैं आपसे पूछता हूं कि आप अपने आपको क्यों गिरा रहे हैं! अपना साम्राज्य आपने क्यों गमाया? अपना महाराज्य आपने क्यों तोड दिया? अपने राज्यसे आप क्यों भाग गये?

क्या आपको पता है कि आप कौन हैं? मैं यदि कहूं कि आप स्वयं "इंद्र" हैं, तो कदाचित् आप मानेंगे भी नहीं! परंतु वेद ही कहता है कि जीवात्माका नाम इंद्र है। आप जीवात्मा हैं, इस-लिये आपमेंसे प्रत्येक "इंद्र" है। आपकी भाषामें भी इसका प्रमाण है, आप अपने हाथ, पांव, आंख, नाक, आदिको "इंद्रिय" कहते हैं। "इंद्रिय" क्या है? जो "इंद्र" की शक्ति है वह

ही " इंद्रि-य " होती है। आप अपने अवयवोंको इंद्रिय कह रहे हैं और मान रहे हैं, इससे सिद्ध है कि आप अपने आपको भी " इंद्र " ही मान रहे हैं ! फिर आपके " राजा, महाराजा और सम्राट् " होनेमें शंका क्यों है ? यदि आप सचमुच इंद्र हैं तो आप सम्राट् भी हैं।

मनुष्योंके राजाको '**नरेंद्र**' कहते हैं, पक्षियोंके राजाको '**खगेंद्र**' कहते हैं, मृगोंके राजाको '**मृगेंद्र**' कहते हैं। नरोंका इंद्र, खगों (पक्षियों) का इंद्र, मृगोंका इंद्र जो होता है, वह उस उस जातिका राजाही होता है। इस प्रयोगसे आपको ज्ञात होगा, कि इंद्र शब्द राजा; महाराजा और सम्राट्का भाव बताता है। वेद भी कहता है कि—

(१) **इंद्रःसत्यः सम्राट्** ॥ ऋ. ४।२१।१०
(२) **त्वमिंद्राऽधिराजः** ॥ अ. ६।९८।२
(३) **इंद्रो यातोऽवसितस्य राजा** ॥ ऋ. १।३२।१५

" (१) इंद्र सच्चा सम्राट् है, (२) हे इंद्र ! तूं अधिराजा है, (३) इंद्र स्थावर जंगमका राजा है।"

यह वेदका कहना है। **जिस कारण जीवात्मा इंद्र है, उसी कारण जीवात्मा सम्राट्, अधिराजा, और स्थावर जंगमका महाराजाभी है।** यह निश्चय रखिये कि वेदका कहना कभी असत्य नहीं हो सकता। यह दूसरी बात है कि आप वेदके कथनको न मानते हुए अपने आपको हीन दीन और दुर्बल मान रहे हैं ! और यही कारण है कि आप स्वयं राजा और

महाराजा होते हुये भी साधारण कैदीके समान पराधीन बन गये हैं! आप सम्राट् होनेपर भी अपने आपको पराधीन समझ रहे हैं!!! आप स्वामी और धनी होते हुए भी दास और निर्धन बने हैं! यदि आप आज्ञा करेंगे तो आपकी आज्ञा मानी जा सकती है, परंतु कुविचारोंके आधीन होनेके कारण आप आज्ञा करना ही भूल गये हैं!!

प्रिय पाठको! सोचिये तो सही, यह क्या चमत्कार है? जीवात्मा राजा और महाराजा है और उसका राज्य अथवा साम्राज्य इस देहमें हैं। परंतु इसमें कितना परिवर्तन आगया है, कि यह महाराजा और सम्राट् आत्मा यहां ही अपने राज्यमें, तथा अपनी ही राजधानीमें अपने आपको कैदी समझने लगा है!! **अपना साम्राज्य शत्रुओंके आधीन करके स्वयं हीन और दीन बन कर दूसरोंकी सहायतासे अपना गुजारा चलानेका यत्न कर रहा है!!!** स्वयं समर्थ होते हुए निर्बलके समान व्यवहार कर रहा है!!

अहमिंद्रो न पराजिग्ये ॥ ऋ १०।४८।५

"मैं इंद्र हूं इसलिये मेरा पराभव नहीं हो सकता" यह इसका भाव होना चाहिए था, परंतु इस उच्च भावके स्थानपर यह समझता है कि "मैं अनादिकालसे बंधनमें हूं, मैं कैदी हूं, मैं कारागृहमें हूं, मैं कभी स्वतंत्र नहीं था, मैं पराभूत हुआ हूं!" यह महाराजा ऐसा पागल बना है! यह सम्राट स्वयं कैदमें जाकर रहा है!!! अब इसका यह पागलपन कैसे दूर हो सकता है?

कुत्सित विचार इसके शत्रु हैं, हीन भाव इसके घात करनेवाले हैं, अपनी शक्तिपर अविश्वास होनेसे उक्त शत्रु प्रबल होते हैं, और आत्मिक बलपर दृढविश्वास होनेसे उक्त शत्रु दूर होते हैं। इसलिये, हे भाइ जिवात्मन् ! यह बात समझो, कि " **तुह्मारा जय और पराजय तुह्मारे अंदरके भावोंके अनुकूल होता है।** " इसलिये वेद कहता है कि " कानसे अच्छी बात सुनो, आंखोंसे अच्छे पदार्थ देखो, और आयु समाप्त होने तक ज्ञानियोंकी सेवा करो। " ऐसा करनेसे सुविचार जागृत रहते हैं और सुविचारोंके कारण सदा विजय होता है। यह सम्राट् आत्माराम महाराजाधिराज है, इसके राज्यमें एक तरफ सप्त ऋषियोंका पवित्र आश्रम है। ये सप्तऋषि इस पवित्र आश्रममें यज्ञयाग कर रहे हैं; देखिये इनका सत्र कैसा चल रहा है !! यह सौ वर्ष चलनेवाला सत्र है। सप्तऋषि ही स्वयं इसमें हवन कर रहे हैं देखिये—

सप्त ऋषयःप्रति हिताः शरीरे सप्त रक्षंति सद मप्रमादं ॥ यजु. ३४।५५

" सात ऋषि प्रत्येक शरीरमें (हिताः) रखे हैं, और दूसरे सात (अ–प्रमादं) दोष न करते हुए इस (सदं) यज्ञगृहका रक्षण करते हैं। "

इस मंत्रमें सप्तऋषियोंके सौ वर्ष चलनेवाले सत्रका वर्णन है। ये सप्तऋषि कौन हैं ? इस शंकाका उत्तर यह है कि, सात ज्ञान इंद्रियां ही सप्त ऋषि हैं। दो आंख, दो कान, दो नाक, एक वागिंद्रिय इन सात इंद्रियोंसे ज्ञान अंदर आता है। ऋषियोंका

ज्ञान-यज्ञ ही हुआ करता है। मस्तिष्कके अग्निमें ज्ञानकी आहुतिया ये सप्तऋषि डाल रहे हैं और इनका यह ज्ञानयज्ञ सौ वर्ष तक चलता रहेगा। क्यों कि मनुष्यकी साधारण आयु सौ वर्षकी है, सौ वर्ष चलनेवाला यह ज्ञानसत्र विशेषतः मस्तकके विभागमें ये सातों ऋषि चला रहे हैं। इनका मुख्य हवन कुंड मस्तकमें है। इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान मस्तिष्कमें संकलित हो रहा है। ये ज्ञानी ऋषि ब्राह्मण हैं। यह ब्राह्मणोंका ज्ञानयज्ञ है। उक्त सम्राट्के राष्ट्रमें यह यज्ञ चल रहा है, और यज्ञका फल सम्राट्को भी मिल रहा है। प्रजाजन जो कार्य करते हैं, उसका अंश महाराजाधिराजको कर रूपसे मिलनाही चाहिए। ब्राह्मणोंके ज्ञानयज्ञमें ज्ञानके संस्कार आत्म-तक पहुंचते हैं, यही ब्राह्मणोंका करभार है।

पुरुषो वाव यज्ञः॥ छां. उ. ३।१६।१

" मनुष्य यज्ञरूप है। " जन्मसे मरण तक यह यज्ञ चलता है, इसके तीन सवन निम्न प्रकार हैं—

तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातः सवनं० ॥ १ ॥ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनं सवनं० ॥ ३ ॥ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तृतीय सवनं० ॥ ५ ॥ छां. उ. ३।१६

" मनुष्यके आयुष्यके पहिले चौवीस वर्ष इस यज्ञका प्रातः सवन है, उसके पश्चात् के चवालीस वर्ष इस यज्ञका माध्यंदिन सवन

अस्तु। ये सब कर्मवीर दोषोंको दूर करके दुःखोंसे बचाते हैं इस लिये कहा है कि—

सप्त रक्षंति सदमप्रमादम्। य. ३३।९९

" ये सात क्षत्रिय इस यज्ञका रक्षण करते हैं। " क्यों कि रक्षा करनेका कार्य क्षत्रियोंकाही है। सात ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, और सात क्षत्रिय उस यज्ञकी रक्षा कर रहे हैं। यहां सात जातियां समझना उचित हैं क्योंकि एक कानके अधिकारमें करोड़ों छोटे कीटाणु कार्य कर रहे हैं, उसीप्रकार बाहुमें भी करोडों क्षत्रिय कीटाणु हैं। इसप्रकार यह महाराज्य करोडों ब्रह्मक्षत्रियोंका साम्राज्य है तथा क्षत्रियोंके समूहमें वैश्यशूद्रादिक सबही विद्यमान हैं। इस संपूर्ण महाराज्यका महाराजा आत्मा है, इसलिये यह सच्चा महाराजा है। इसकी व्यवस्था निम्नप्रकार है—

आत्मा	....	....	महाराजा अथवा सम्राट्,
बुद्धि	....	....	आमंत्रण परिषद्, मंत्रीमंडल,
मन	....	...	सभा और समिति,
ज्ञानेंद्रिय	....	....	ब्राह्मण दल,
कर्मेंद्रिय	....	....	क्षत्रियादिकोंका संघ
शरीर	....	....	राष्ट्र, कर्मभूमि

सभा और समितिमें ब्राह्मणक्षत्रियादिकोंके प्रतिनिधि जिस व्यवस्थासे आते हैं, उसी व्यवस्थासे ज्ञान और कर्म इंद्रियोंके अंश मनमें संमिश्रित हुए हैं। इसप्रकार यह साम्राज्य है। इसके अतिरिक्त जो अंदरके स्थानमें अन्य वीर इस राष्ट्रका-

हित कर रहे हैं उनकी गिनती हुई नहीं है । उनका समावेश उक्त क्षत्रियोंमें ही करना उचित है ।

इसप्रकारके राष्ट्रका अधिपति यह जीवात्मा है । जब यह स्थूल शरीर पर कार्य करता है तब इसकी पदवी " **राजा** " होती है, जब यह सूक्ष्मशरीर पर कार्य करनेमें प्रवीण होता है, तब इसको " **महाराजा** " कहते हैं । जब यह कारणशरीर पर कार्य करनेमें कृतकारी होता है तब इसीको " **सम्राट्** " कहते हैं और जब यह महाकारणशरीरमें निवास करके वहांका आनंद अनुभव करने लगता है तब इसीको " **स्वराट्** " किंवा " **विराट्** " कहते हैं । यही इसकी मुक्त अवस्था है, इससमय यह अपने ही तेजसे प्रकाशित होता है । अन्य शब्दद्वारा प्रकट होनेवाली अवस्थायें इससे छोटी अवस्थायें हैं । जीवात्माकी सबसे श्रेष्ठ अवस्था स्वराट् और विराट् शब्दोंद्वारा प्रकट हो रही है । यही स्वराज्यका महत्व है ।

अब पाठक जान गये होंगे, कि हरएक मनुष्यके अंदर जो आत्मा बैठा है, वह ही राजा, महाराजा, सम्राट्, स्वराट्, आदि है; परंतु हीन विचारोंके आधीन होनेके कारण वह अपने अधिकारसे भ्रष्ट हुआ है, जब इसको आत्माकी शक्तिका अनुभव होगा तब वह अपने स्वराज्यमें आनंद करने लगेगा ।

इसके साम्राज्यका वर्णन जितना चाहे विस्तार पूर्वक कथन किया जा सकता है और उसका संक्षेप भी किया जा सकता है । यहां सारांशसे इसका स्वरूप बताया है । अब इसका चित्र बनाकर उक्त बात ही फिर लिखता हूं-—

क्षत्रिय शूरवीर

ब्राह्मण वैश्य शूद्र

मस्तक ......हृदय......नाभि......मध्य

जनन इंद्रिय

पाद

बाहु हस्त
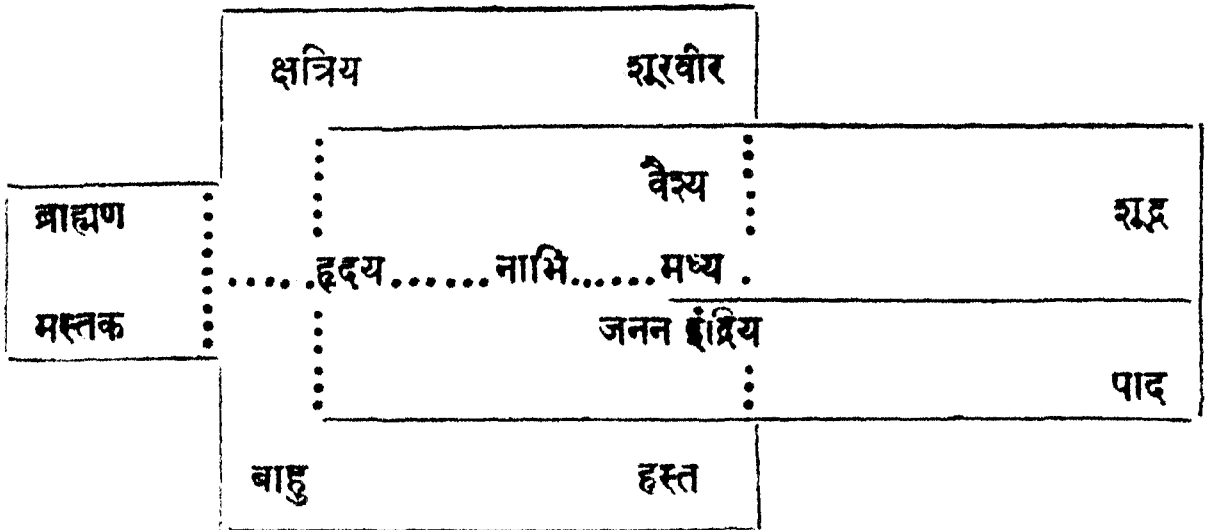
ज्ञानयज्ञ शौर्ययज्ञ वीर्ययज्ञ देहयज्ञ

उक्त चित्रसे व्यक्तिमें और राष्ट्रमें जिन बातोंकी समता है उन बातोंकी कल्पना व्यक्त हो सकती है। तथा शरीरमें राष्ट्रभाव और राष्ट्रमें शरीरभाव किसप्रकार समझा जा सकता है, इसकाभी ज्ञान हो सकता है। वेदकी गुह्यबात समझमें आनेके लिये इस कल्पना की पूर्ण जागृति होनी चाहिए, देखिये;

(१) मनुष्यका शरीर (जनताका अथवा) राष्ट्रका संकुचित आकार है,

(२) राष्ट्र अथवा जनता मनुष्यका विस्तृत शरीर है।

ज्ञान
शौर्य
वीर्य
सेवा

व्यक्ति

व्यष्टि

ब्राह्मण वर्ण

क्षत्रिय वर्ण

वैश्य वर्ण

शूद्र वर्ण
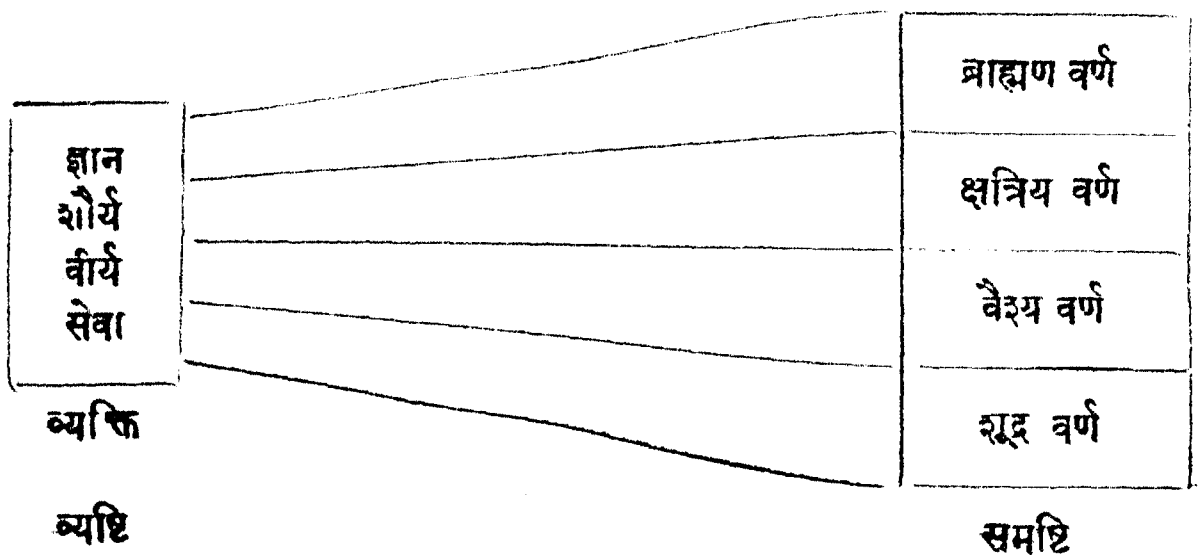
समष्टि

इस प्रकार यह विस्तार और संकोच की कल्पना है। एकदेह में जो गुण हैं वे ही राष्ट्रमें वर्णरूपमें परिणत हुए हैं। अपने अंदर राष्ट्रीयता और राष्ट्रमें अपनापन देखना चाहिये। समष्टि व्यष्टिमें एक भावनाका दर्शन करना चाहिये। दोनों स्थानोंमे कार्य करने वाले एकही प्रकारके नियम हैं। जिसके विचारमें यह बात आजायगी वह अपने आत्माका साम्राज्य ठीक प्रकार जान सकता है।

अपने शरीरमें ब्राह्मणक्षत्रियोंका तथा अन्य वर्णोंका निवास इसप्रकार जाना जा सकता है। यह अपना ही वैभव है। परंतु जिनका उक्त स्थानमें वर्णन किया है वे ब्राह्मण और क्षत्रिय वेतन लेकर कार्य करनेवाले हैं, यह बात भूलनी नहीं चाहिये। जबतक आप उन ब्राह्मणोंको दक्षणा देंगे, तबतक वे आपका यज्ञ चलाते जाँयगे; तथा जबतक आप क्षत्रियोंको वेतन देंगे तबतक वे इस राष्ट्रका संरक्षण करते रहेंगे। आंख, नाक, कान आदि ज्ञान इंद्रिय तथा हस्तपाद आदि कर्म इंद्रिय ये यहां इस शरीरमें तबतक ही कार्य कर सकते हैं, कि जब तक शरीरको अन्न मिलता रहेगा। शरीरको जो अन्न प्राप्त होता है वह रसरूपसे प्रत्येक इंद्रियको मिलता है। यही इनका वेतन है।

वेतन लेकर राष्ट्रसेवा करनेवाले बुरे नहीं होते, परंतु " **जो अवैतनिक स्वयंसेवक होते हैं उनकी योग्यता निःसंदेह विशेष होती है।** " उक्त ज्ञानवीर और कर्मवीरोंकी वैतनिक सेवा है। जिसप्रकार मासिक वेतनपर अध्यापक और सैनिक राष्ट्रमें रखे जाते हैं उसीप्रकार इनका कार्य शरीरमें है। नाकके लिये सुगंध

ही चाहिये, दुर्गंध आनेपर यह नाराज होता है, आंखको उत्तम सुंदर आकार चाहिए, कुरूप शकलें सन्मुख आनेपर यह घबराता है, कानके लिये मधुर स्वर चाहिये, कर्कश आवाज जब आने लगता है तब यह असंतुष्ट होता है, जिह्वाके लिये उत्तम स्वादु पदार्थ चाहिये, वैसे पदार्थ न मिलनेपर यह हठ करने लगती है। चर्मेंद्रिय को नरम नरम स्पर्शवाले पदार्थ चाहिये तब कार्य करता है नहीं तो हडताल करने लगता है। इसप्रकार ये अध्यापक किंवा ब्राह्मण बडा ऐश आराम चाहते हैं, इनमेंसे कोई भी कष्ट करनेके लिये तैयार नहीं है। इनको कितनी भी दक्षिणा दी जावे, ये कभी तृप्त नहीं होते। इनके अंदर इस प्रकार भूख होनेसे इनका वेतन बढाते बढाते महाराजासाहेब किसी किसी समय तंग आजाते हैं, परंतु इनको उसकी कोई पर्वाह नहीं है। **"ऐसे वैतनिक सेवक राष्ट्रका क्या लाभ करेंगे?"**

हाथ, बाहु आदि क्षत्रिय भी वेतन मिलने तक ही सेवाका कार्य करते हैं। मल मूत्र द्वारोंके रक्षक भी थोडीसी विरुद्ध बात होनेपर ऐसे नाराज होते हैं, और अपना काम छोड देते हैं। इन भंगी-योंकी हडताल जब इस राष्ट्रमें हो जाती है तब संपूर्ण राष्ट्रपर बडी ही आपत्ति आ जाती है।

इसप्रकार उक्त ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें पूर्ण स्वार्थ होनेसे, ये अपने सुखका विचार अधिक करते हैं और सब शरीर-रूपी राष्ट्रका विचार कम करते हैं। इनमें जाति भेद भी ऐसा कठोर है, कि एक जातिका वीर दूसरी जातिके वीरका

स्थान स्वीकार करनेके लिये कभी तैयार नहीं होता, इसीलिये कान कभी आंखके स्थानपर नहीं आता ! ! अपनी अपनी जातिके बंधनोंमें ही ये रहते हैं । इसप्रकार इनके आपसके झगडे और इनका स्वार्थ है । जब तक ये खुश रहते हैं, तब तक कार्य ठीक चलता है, परंतु जब ये बिगड़ बैठते हैं, तब बड़ी विपत्ति होती है । इसलिये महाराजाको इन पर पूरा विश्वास रखना उचित नहीं है ।

यहां बहुत पाठक कहेंगे, कि ऐसा सम्राट् बनना बडा ही कष्टप्रद है ! ! सचमुच यही अवस्था है । **जो सम्राट् अपने तनख्वा दार सैनिकोंके बलपर विश्वास रखता है, और उनके शस्त्रास्त्रोंसे अपने आपको बलवान समझता है, वह वैसाही फंस जाता है कि जैसा जीवात्मा इन इंद्रियोंपर विश्वास करता हुआ फंसता है ।** जब इस प्रकार जह जीव इन इंद्रियोंके आधीन हो जाता है तब उसपर जो विपत्तियां आतीं हैं, उनका वर्णन करना अत्यंत कठिन है ।

यदि केवल इतने ही इस राष्ट्रके सेवक होते, तो इसके साम्राज्यमें कोई गौरव न होता; क्योंकि उक्त वीरोंके स्वार्थके साथ साथ उनको आराम और विश्राम भी बहुत लगता है । आधा समय तो इनके आराम और विश्राममें ही चले जाता है । वेतन लेंगे, आराम और विश्राम करेंगे और शेष समयमें यदि ये खुश रहे तो ही काम करेंगे ! ! ! यह इनकी अवस्था है । इसलिये इनकी रक्षासे इस राष्ट्रकी रक्षा नहीं हो सकती । फिर इस सम्राट्को किन वीरों पर निर्भर रहना चाहिये ?

इस राष्ट्रमें अवैतनिक कार्य करनेवाले कई स्वयं सेवक हैं वे ही इस राष्ट्रके सच्चे हितचिंतक हैं । ये बिलकुल वेतन नहीं लेते, भोग नहीं भोगते, आराम और विश्राम नहीं करते और निरंतर कार्य करते हैं । इनपर विश्वास करके ही सम्राट्को आराम प्राप्त हो सकता है, इनका वर्णन वेद निम्न प्रकार कर रहा है—

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ यजु. ३३।५५

“ जब उक्त सातों वीर सोनेवालेके स्थानमें लीन होते हैं, तब उस सत्रमें कभी न सोनेवाले दो देव जागते हैं । ”

ये हमेशा जागनेवाले और कभी न सोनेवाले देव श्वास और उच्छ्वास हैं । येही प्राण हैं । इनके पांच भेद हैं, प्राण अपान व्यान उदान और समान । ये इनके मुख्य भेद हैं, इनके अतिरिक्त और पांच भेद हैं, नाग कूर्म कृकल देवदत्त और धनंजय ये उपप्राण हैं । सब मिलकर प्राणके दस भेद हैं । ये दस महावीर इस राष्ट्रकी अवैतनिक सेवा करते हैं । भोजन मिले न मिले, विश्राम मिले न मिले, सुख होवे दुःख होवे, संपत्ति मिले अथवा आपत्ति आवे इन महावीरोंकी निरंतर सेवा चलती है । ज्ञानेंद्रियोंके पंडित, कर्मेंद्रियोंके शूर निद्रामें सो जाने पर भी, ये अवैतनिक महावीर स्वयंसेवक अहर्निश कार्य करते ही रहते हैं । ये थकते नहीं, विश्राम नहीं करते, और कभी अपना कार्य बंदभी नहीं करते हैं । जब ये अपना कार्य बंद करते हैं तब यह संपूर्ण साम्राज्य टूट जाता है, जब तक

इनकी सेवा चलती है तब तक इस साम्राज्यमें अद्वितीय " **जीवन** " रहता है ।

इनकी निःस्वार्थ सेवा होती है, न इनकी खुशबूसे प्यार होती है और न बदबूसे वैर होता है; न ये सुरूपतापर प्रेम करते हैं और न कुरूपतासे द्वेष करते हैं; न मधुर स्वरसे इनकी रुचि है और न कठोर स्वरसे अप्रसन्नता है, न ये मृदुस्पर्श चाहते हैं और न तीक्ष्णस्पर्शका तिरस्कार करते हैं । **एकही प्रकारसे और एकनिष्ठासे ये अव्याहत राष्ट्रसेवाका कार्य करते हैं** । यह इनकी इसप्रकार निःस्वार्थ सेवा होती है, इसीलिये जीवात्माको सम्राट् होनेका आनंद है । इनके साथ रहनेसे तथा इनकी सहायतासेही सम्राटको स्वानंद साम्राज्य प्राप्त होता है । इसप्रकार " **जो सम्राट् वेतन लेनेवाले सैनिकोंपर विश्वास न करता हुआ, अवैतनिक निःस्वार्थी राष्ट्रहितैकतत्पर महावीरोंकी अनुकूलता संपादन करेगा वह ही सच्चा सम्राट् बनेगा** । "

प्रिय पाठको ! आपके राज्यमें अर्थात् आप प्रत्येकके शरीरमें प्राणही अवैतनिक महावीर हैं और उनकीही निःस्वार्थी सेवा आपके स्वास्थ्यके लिये हो रही है । इस बातका अनुभव कर लीजिये और इन महावीरोंका स्वागत करनेके लिये तैयार हो जाइये । आप जितना ख्याल अपने इंद्रियोंका करते हैं उतना इन प्राणोंका नहीं करते ! ! यह आपकी बडी भारी भूल है । आप अपने सच्चे हितैषियोंका ख्याल नहीं करते, परंतु स्वार्थी सेवकोंकाही विशेष विचार कर रहे हैं ! ! !

आप पूछेंगे कि इन महावीरोंका सत्कार कैसा किया जा सकता है ? " **प्राणायाम** " की विधिसे इनका सत्कार किया जाता है। प्राणायामद्वारा इन महावीरोंका सत्कार करेंगे तो आपका बडा लाभ हो सकता है। आपका साम्राज्य दीर्घकाल तक रहेगा। उनका स्वागत करनेसे आपकाही अपना गौरव बढना है। वे बिचारे स्वयं कुछ चाहतेही नहीं, खानेपीनेके विना आपकी सेवा कर रहे हैं; फिर उनका सत्कार करनाभी आपसे नहीं होता ?

इसलिये प्रियपाठको ! अपने प्राणोंका सत्कार कीजिये। सबेरे और शामको नियमपूर्वक और विधियुक्त प्राणायाम कीजिये। अपनी प्राणशक्तिका महत्व जानकर, उनका प्रभाव समझकर और उनका कार्य पहिचानकर उनका सत्कार कीजिये।

" **विधियुक्त प्राणायाम करनेसे आपका उत्साह बढ़ेगा, दीर्घ आयु प्राप्त होगी और अपूर्व आनंद अनुभवमें आ जायगा। इसलिये इन अवैतनिक स्वयंसेवकोंका ही सदा सत्कार कीजिए। भूलना नहीं।** " क्या आप इस बातका स्मरण रखेंगे ?

योग साधन।

(२) सामान्य स्वरूप।

वैदिक धर्मके तत्व आचरणमें लानेके लिये योगसाधन का अनुष्ठान करनेकी अत्यंत आवश्यकता है । योगसाधनके विना धर्मका आचरण होना कठिन है । इसलिये योगसाधनका विचार करना आवश्यक है ।

चित्तकी वृत्तियोंका निरोध ही योग है । गीतामें कहा है कि कर्मकी कुशलताका नाम योग है तथा सुख और दुःखके विषयमें जो समता बुद्धि होती है उसको योग कहते हैं । सुख प्राप्तिसे हर्ष होता है तथा दुःख प्राप्त होनेसे विषाद होता है । बाहिरके सुखदुःखका जो यह इष्ट और अनिष्ट परिणाम चित्तपर होता है उससे चित्तकी वृत्ति ऊंची नीची होती है । इस प्रकार चित्त चंचल होनेके कारण अस्वस्थता होती है । इस अस्वस्थताको दूर करना और चित्तकी समता स्थिर करना योगका प्रयोजन है । चित्तकी चंचल वृत्तिके कारण मनुष्यका अत्यंत नुकसान होता है । इसका अनुभव विचारकी दृष्टिसे प्रत्येक दिनके व्यवहारमें पाठक देख सकते हैं ।

जब योगकी सिद्धि होती है तब आत्मा अपने निजरूपमें स्थिर रहता है। साधारण अवस्थामें आत्मा चित्तकी वृत्तियोंके साथ भ्रमता रहता है। जिस समय चित्तमें जो वृत्ति होती है उस वृत्तिके अनुसार आत्मा बन जाता है। यही आत्माकी पराधीनता है। अर्थात् इस आत्माकी पराधीनताको दूर करके उसको स्वतंत्रता प्राप्त करा देना योगका कार्य है; इस प्रकार योगसाधनसे स्वातंत्र्य प्राप्त होता है। इस लिये हरएक मनुष्यको योगसाधन करना आवश्यक है।

चित्तकी वृत्तिमें काम, क्रोध, लोभ इत्यादि विकार उत्पन्न होगये तो आत्मा भी कामी क्रोधी लोभी होकर अनर्थ करनेके लिये प्रवृत्त होता है। इस प्रकार काम क्रोधादि शत्रुओंके आधीन हो जानेसे आत्माका स्वातंत्र्य नष्ट होता है। यही साधारण लोगोंकी अवस्था है। यही पारतंत्र्य है और यही दुःख है; इसको हटाना प्रत्येकका पुरुषार्थ है।

जीवात्माकी स्वतंत्रता उसको प्राप्त करा देना योगका उद्देश है। आत्मा सबका राजा है, चित्तकी वृत्तियोंका वह गुलाम नहीं है परंतु उनका वह स्वामी है। मन और बुद्धिका वह प्रभु है। इंद्रियोंका वह अधिष्ठाता है, इसका ज्ञान आत्माको योगसाधन द्वाराही प्राप्त होता है। योगसाधन करनेके पूर्व जो आत्मा अपने आपको चित्तवृत्तियोंका गुलाम समझता था, वह ही आत्मा योगसाधन करनेके पश्चात् अपने आपको स्वामी और अधिष्ठाता अनुभव करने लगता है। यह योगसाधनका महत्व है।

चित्तकी पांच वृत्तियां होतीं हैं और प्रत्येकके दो भेद होते हैं। एक चित्तकी वृत्ति होती है वह क्लेश उत्पन्न करती है और दूसरी वृत्ति होती है वह क्लेशका निवारण करती है। देखिए कामका उपभोग करनेकी एक चित्तकी वृत्ति होती है उसके प्रबल हो जानेसे मनुष्य कामी बनता है और अपनी शक्तिका नाश करता है। यह क्लेशकारक चित्तवृत्ति है। इसीप्रकार अनेक भेद इसमें हैं उनका विचार पाठक कर सकते हैं। क्लेशको दूर करनेवाली दूसरी वृत्ति चित्तमें उत्पन्न होती है वह कहती है कि परोपकार करो, ईश्वरभक्ति, करो आदि। इस वृत्तिसे क्लेशोंका निवारण होता है!

(१) प्रमाण, (२) विपर्यय (३) विकल्प, (४) निद्रा और (५) स्मृति ये चित्तकी पांच वृत्तियां हैं। ये वृत्तियां ही क्लेशकारक और क्लेशनिवारक हो सकती हैं। जैसा उदाहरण के लिये देखिए, योग निद्रा लेनेसे मनुष्यका आरोग्य बढता है इस लिये निद्रा क्लेशनिवारक कही जा सकती है। परंतु यही निद्रा अत्यंत आने लगी तो सुस्ती बढ जानेके कारण मनुष्य निकम्मा हो जाता है। इसीप्रकार स्मृति वृत्ति है। स्मरण शक्तिको स्मृति कहते हैं। अच्छे अच्छे उपदेशोंका स्मरण रखनेसे मनुष्यका अभ्युदय हो सकता है; परंतु दूसरोंके दोषोंकाही निरंतर स्मरण करनेसे मनुष्य गिर जाता है, अर्थात् यही स्मरण शक्ति जैसी उन्नतिका साधन हो सकती है उसी

प्रकार गिरावटका हेतु भी बन सकती है। इसीप्रकार अन्य सब वृत्तियोंके विषयमें समझिए।

प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण हैं। प्रमाणवृत्ति तीन प्रकारकी होती है। प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाग और आगम प्रमाण। जो इंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है वह प्रत्यक्षप्रमाण है। प्रत्यक्ष ज्ञानके अनुसार जो तर्क किया जाता है उसको अनुमान कहते हैं। तथा प्राचीन सत्पुरुषोंका जो अनुभव शब्दोंमें संगृहीत होता है वह आगम होता ह। यह वृत्ति भी क्लेशकारक और क्लेश निवारक होती है। सद्गुरुके शब्द पर विश्वास रखनेसे लाभ हो सकता है और ढोंगीके शब्दपर विश्वास रखनेसे हानि होती है। प्रमाणपूर्वक तर्क करनेसे लाभ होता है परंतु वितर्कसे हानि होती है। इस प्रकार प्रमाणवृत्ति लाभदायक भी है और हानिकारक भी होती है।

उलटा ज्ञान होना विपर्यय कहलाता है। यथार्थ स्वरूपसे भिन्न कुछका कुछ समझना विपर्यय वृत्ति कहलाती है। पदार्थका वास्तविक यथार्थ ज्ञान होनेसे लाभ और उलटा ज्ञान होनेसे नुकसान हो सकता है। कई लोक भ्रमसे हानिकारक पदार्थको उद्धारक समझते हैं और सत्य श्रेष्ठ उद्धारकको हानिकारक समझते हैं और फंस जाते हैं। यह उलटा ज्ञान है। मनुष्यको इस प्रकारकी विपरीत भावनासे बचना चाहिए।

केवल शब्दसे ही एक कल्पना प्रसरित होती है परंतु वास्तवमें उस शब्दका वाच्य कोई पदार्थ नहीं होता । इस प्रकारके कल्पनामात्रको विकल्प कहते हैं । पारससे सोना होता है ऐसा समझा जाता है । यहां पारस न होते हुए भी उसकी कल्पना लोगोंमें है । इसके भ्रमसे लोग फंसते हैं, मिथ्या मार्गसे गोते खाते रहते हैं । इसीप्रकार इस विषयकी और भी बातें देखनी होती हैं । मनुष्यकी सुंदरता, चेतनता, कुरूपता आदि शब्द हैं परंतु मनुष्यसे भिन्न इनका अस्तित्व नहीं है । इसीप्रकार इस विषयमें समझिए ।

निद्राका अनुभव सबको है । प्रत्येक प्राणी प्रति दिन निद्राका अनुभव लेता है । निद्राके समय अभावका प्रत्यय आता है । जागृतिमें जो दिखाई देता था उस सबका उस अवस्थामें अभाव हो जाता है । परंतु जागनेके समय वह कहता है कि ‘ आहा ! मुझे अच्छी नींद लगी थी, मैं अच्छी प्रकार सोया था । ’ अर्थात् निद्रामें भी जीवको एकप्रकारका अनुभव आता है । यह एक चित्तकी वृत्ति है ।

पांचवी चित्तवृत्ति स्मृति है । अनुभव किये हुवे विषयका स्मरण करना स्मृति कही जाती है ।

उक्त प्रकारकी पांच वृत्तियां हैं । इनका हरएक मनुष्यको प्रतिदिन अनुभव होता है । प्रत्येक मनुष्य इनसे प्रतिदिन काम लेता रहता है । इससे बुरा भला उद्योग करता रहता है । इन

पांचों वृत्तियोंको रोकनेका अभ्यास करना, इनको कुशलतापूर्वक रोकना, स्वाधीन रखना, योग होता है। इन वृत्तियोंके आधीन न होना परंतु अपने आधीन इन वृत्तियोंको रखना योग है। चित्त-वृत्तियोंके आधीन हो जानेसे अधोगति होती है और वृत्तियोंको अपने आधीन रखनेसे उन्नति होती है। प्रत्येक मनुष्य अपनी वृत्तियोंका विचार करेगा और उनको अपने स्वाधीन रखनेका प्रयत्न करेगा तो उसको पता लग सकता है, कि वृत्तियोंको स्वाधीन रखनेसे कितना आत्मिक बल बढ़ सकता है। आत्माके अंदर बड़ी भारी शक्ति है, परंतु चित्तवृत्तियोंके आधीन हो जानेसे वह आत्माकी शक्ति कम होती रहती है, और इसीलिये चित्त-वृत्तियोंके आधीन बना हुआ पराधीन जीवात्मा निर्बल और हता-शसा होता है। परंतु जिस समय वह अपनी प्रभुताको जानता है और चित्तवृत्तियोंका निरोध करता है; उसी समय वह बड़ा शक्तिमान बन जाता है। पराधीनतामें अशक्तता है और स्वाधी-नतामें बलिष्ठता है। पराधीनताको दूर करना और स्वाधी-नताकी प्राप्ति करना योग है।

अभ्यास और वैराग्यसे चित्तवृत्तियोंका निरोध हो सकता है। अपना इष्ट हेतु सिद्ध होने तक प्रबल पुरुषार्थ श्रद्धाके साथ करने का नाम अभ्यास है। वह अभ्यास बहुत कालतक लगातार और अच्छी प्रकार करनेसे लाभदायक होता है। चित्तकी वृत्तियोंको रोकनेका काम बडा बिकट है। आसानीसे नहीं हो सकता। इस

लिये बहुत कालपर्यंत प्रतिदिन दृढनिश्चयसे प्रयत्न होनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है । यह काम थोडे दिनोंके अल्प प्रयत्नसे साध्य होनेवाला नहीं है । तथा अभ्यास करनेका मार्ग भी योग्य होना चाहिए, अन्यथा सबका बिगाड होना संभव है । इस लिये अनुष्ठानकी ठीक विधि जाननेकी अत्यंत आवश्यकता है ।

विषयोंके भोग भोगनेकी जो तृष्णा होती है उस तृष्णासे दूर रहनेका नाम वैराग्य है । विषयभोगकी इच्छाका दमन करना योग्य है । विषयभोगकी इच्छा प्रबल होनेसे चित्तकी वृत्तियां भड़कने लगती हैं । इस लिये विषयभोगकी इच्छाका संयम करना उचित है । इस प्रकार निरंतर अभ्यास और भोगेच्छाका संयम ये दोही उपाय हैं, कि जिनसे चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है और योगसाधन हो सकता है । इसलिये जो योगसाधन करना चाहते हैं उनको उचित है, कि वे इन दो उपायोंका विशेष ध्यान रखें । इन दो उपायोंके विना योगसाधन करना अशक्य है ।

विषयभोगकी तृष्णासे दूर रहनेका नाम वैराग्य है ऐसा ऊपर कहाही है । जब आत्माके स्वरूपको जाननेमें अभिरुचि बढ जाती है, आत्माके एक एक गुणमें प्रीति और भक्ति बढने लगती है, तब प्राकृतिक भोगोंसे मन हटता है, और न केवल प्राकृतिक विषय परंतु प्राकृतिक गुणोंके विषयमेंभी आसक्ति हटने लगती है । यह अवस्था आत्माके शक्तियोंका अनुभव आनेपर प्राप्त होती है इसलिये इसकी श्रेष्ठता निःसंदेह है ।

निरंतर अभ्याससे और पूर्ण वैराग्यसे जब आत्माका अनुभव होने लगता है तब उसको अपने आत्माके स्वातंत्र्यका अनुभव आने लगता है। यही योगसिद्धिका प्रारंभ है। इंद्रियोंसे अनुभव करने योग्य स्थूल पदार्थपर चित्तकी एकाग्रता करनेसे आत्माके अनुभवका किंचिन्मात्र बोध होने लगता है, इसको वितर्क अवस्था कहते हैं। सूक्ष्म तत्वोंपर मनकी एकाग्रता करनेसे जो आत्माके विविध सूक्ष्मशक्तियोंका अनुभव आने लगता है उसको विचार अवस्था कहते हैं। आत्माके आनंद स्वरूपका मनन और चिंतन करते करते जो एक अद्भुत हर्षमय अवस्था प्राप्त होती है उसको आनंद अवस्था कहते हैं। देहादि सब स्थूल तत्वोंसे भिन्न स्वतंत्र ऐसा मैं आत्मा हूं, मैं देहादिकोंको चलानेवाला हूं, मेरे आधीन मन आदि शक्तियां हैं, मैं उनके आधीन नहीं हूं, इसप्रकारके मनन और निदिध्यासनसे जो अपने स्वतंत्र अस्तिस्वका अनुभव प्राप्त होता है उसको अस्मिता अवस्था कहते हैं। प्रारंभिक समाधीके ये प्रकार हैं और पहिलेसे दूसरा श्रेष्ठ है। इस समाधिको संप्रज्ञात समाधि कहते हैं; क्योंकि इसमें अपने अस्तित्वका भान होता है। मैं हूं; मैं स्वतंत्र हूं, मैं आनंदका उपभोग लेता हूं, इस प्रकारकी भावना यहां रहती है इसलिये यह प्राथमिक समाधि कही जाती है।

उक्त प्राथमिक समाधिमें चित्तकी वृत्तियां एकाग्र होकर रहतीं हैं। परंतु चित्तकी वृत्तियोंका पूर्ण लय नहीं होता। इसलिये इससे भी ऊपर चढनेकी आवश्यकता रहती है। चित्तवृत्तियोंके पूर्ण लयके

अनुभवका अभ्यास करनेसे सबसे उच्च ऐसी एक अवस्था प्राप्त होती है कि जिस अवस्थामें केवल संस्कार मात्र शेष रहते हैं और सब अन्य रीतिसे अपनी केवल सत्ताका परम आनंद प्राप्त होता है। यहां चित्तकी वृत्तियोंके साथ इधर उधर भटकना नहीं होता है परंतु केवल अपनीही शुद्ध अवस्थाका अनुभव आता है। यह अनुभव दूसरेकी अपेक्षासे नहीं होता परंतु केवल अपनाही अपनेमें होता है। इसलिये इस अवस्थाका वर्णन शब्दोंसे कहा नहीं जा सकता। यह श्रेष्ठ समाधि है। इसीको प्राप्त करना योगका उद्देश है। मनुष्य जब इस समाधिको प्राप्त करता है तब उसको संदेह नहीं रहता। जबतक तर्कसे बातोंका जानना होता है तबतकही संदेह होता है। तर्कसे परे अनुभवकी अवस्थामें संदेहका होना ही असंभव है।

यह उक्त अवस्था योगसाधनके विविध उपायोंसे प्राप्त होती है। साधारण जनोंके लिये यही राजमार्ग है। परंतु इस जगतमें ऐसे सत्पुरुष होते हैं कि जिनको उक्त उपायोंके विनाही समाधिकी अवस्था प्राप्त होती है। पूर्वजन्मार्जित सुकृतके कारण जन्मसेही उनके आत्मामें ऐसी विलक्षण शक्ति प्रदीप्त रहती है कि जिससे उनका आत्मा साधारण जनोंके समान इंद्रियोंका गुलाम नहीं रहता, परंतु उनका स्वामी बनकर रहता है। तथा सूचना मात्रसे उनका चित्त मूलप्रकृतिमें लीन होकर वे पूर्ण श्रेष्ठ समाधिका अनुभव लेने लगते हैं। जिनका योगाभ्यास पूर्वजन्ममें अधूरा रहता है उनको

पूर्व अभ्यासका फल जन्मसेही प्राप्त होता है। अर्थात् किया हुआ सत्कर्म मृत्यु होनेसेभी व्यर्थ नहीं जाता है। यह नियम यहां सिद्ध होता है।

इन सत्पुरुषोंका विचार छोड दिया और साधारण जनोंकाही विचार किया, तो इन साधारण जनोंके लिये पूर्वोक्त उपायोंके साधनकाही मार्ग है। इस योगसाधनके मार्गमें श्रद्धाकी सहायता अवश्य चाहिए। श्रद्धा न होनेसे योगमार्गका आक्रमण कदापि नहीं हो सकता। श्रद्धासे योगके साधनका अनुष्ठान करते करते विलक्षण बल प्राप्त होता है। यही आत्मक वीर्य कहलाता है। इस आत्मिक वीर्यका अनुभव होते होते अपनी निजशक्तियोंकी स्मृति जागृत होती है और इस कारण प्रलोभनोंके उपस्थित होनेपरभी मन चंचल नहीं होता। क्योंकि यह योगी अपनी शक्तियोंका स्मरण करता हुआ शत्रुभूत भावनाओंसे पराभूत नहीं होता। इस प्रकार अपनी शक्तियोंका अनुभव और स्मरण होनेसे उसके आत्मामें एक प्रकारका आत्मविश्वास और विलक्षण समाधान उत्पन्न होता है। उसके चेहरेपरही इस समाधानका आनंद बाहेरसे देखनेवालोंको दिखाई देता है। तथा उसकी बुद्धिकी ज्ञानशक्ति भी विलक्षण प्रभावशाली होती है। इसकोही प्रज्ञा कहते हैं। इसलिये इस अवस्थामें योगीको प्राज्ञ कहते हैं। साधारण जनोंकी उन्नति इस प्रकार होती है।

जो मनुष्य दृढ निश्चयसे और अचल निष्ठासे योग साधन करने लगते हैं उनको सिद्धि शीघ्र होती है। परंतु जो प्रतिदिन अभ्यास

नहीं करेगा, वर्षानुवर्ष करता नहीं रहेगा, अथवा योग्य रीतिसे नहीं करेगा उसको योग्य सिद्धि नहीं हो सकती। इसका कारण स्पष्ट है।

योगाभ्यास करनेवालोंके प्रयत्न, साधारण, मध्यम और उत्तम होनेसे सिद्धिभी वैसीही साधारण, मध्यम और उत्तम होती है। इस मार्गमें यही विशेषता रहती है कि जिसका जैसा प्रयत्न होता है उसको ठीक वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है। जो कहते हैं कि ध्यान अथवा संध्या आदि करनेमें हमें आनंद नहीं होता, उनको यहां कहना है कि उनकी रीति दोषयुक्त होती है। रीति निर्दोष होगी तो सिद्धि अवश्य होती है।

ईश्वरकी भक्ति करनेसे समाधि शीघ्र ही साध्य होती है। जो ईश्वरकी भक्ति नहीं करते उनको नाना प्रकारके विघ्न होनेके कारण सिद्धि होनेमें देरी होती है। तथा भक्तिके विना चित्तका विक्षेप भी होता है। इसलिये परमेश्वरकी दृढ़भक्ति योगसाधनमें आवश्यक है।

क्लेश, कर्म, कर्मका फल, और वासना ईश्वरमें नहीं होतीं। उसमें न्यूनता न होनेके कारण क्लेश नहीं होते, सदा तृप्त होनेके कारण अपनी इच्छाकी तृप्तिके लिये कर्म करनेकी जरुरत उसको नहीं होती। बुरे भले कर्म न होनेके कारण कर्मके भोग वहां नहीं होते। यह बात आज प्राप्त हो गई अब कल दूसरी प्राप्त करूँगा इस प्रकारकी वासना वहां नहीं है। इस प्रकारका सदा पूर्ण आनंदघन, एक रस और सर्व प्रकारसे तृप्त और परिपूर्ण परमेश्वर है। इसको पुरुष अथवा परमात्मा कहते हैं।

इस ईश्वरमें सब सद्गुणोंकी परमावधि रहती है। उससे कोई भी अधिक नहीं है। सबमें जो उत्तमता आती है उसीसे आती है। सर्व ज्ञानका वही परिपूर्ण भंडार है।

वह ईश्वर अनादि अनंत होनेसे सबका गुरु है। प्राचीनसे प्राचीन जो सत्पुरुष हो गये उनका भी वही गुरु था और भविष्यमें जो साधुसंत होंगे उनका भी वही गुरु होगा। सब कालके सब गुरुओंका वही सच्चा परम गुरु है।

प्रणव अर्थात् ओंकार उसका वाचक शब्द है। प्रणवका जप और प्रणवके अर्थका मनन करना चाहिए। श्रद्धाभक्तिपूर्वक उक्त प्रकारका ओंकारका जप करनेसे समाधिकी सिद्धि होती है। इसप्रकार जप और मंत्रार्थकी भावना करनेसे आत्माके आंतरिक शक्तियोंका बोध होता है। जीवात्माका स्वरूपविज्ञान इसीसे होता है। शरीरसे जीवात्माका भिन्नत्व इसी उपायसे स्पष्ट ज्ञात होता है। तथा सब विघ्न दूर होते हैं। जहां परमेश्वरकी भक्ति होती है वहां कोई विघ्न नहीं ठहर सकते। इसप्रकार परमेश्वरभक्तिकी श्रेष्ठता है। इसलिये हरएकको उचित है कि वह इस भक्तिके आश्रयसे अपनी उन्नतिका साधन करे।

विघ्नोंका विचार।

(३)

यम, नियम आदि साधनों द्वारा हठयोग करनेसे शारीरिक और राजयोगद्वारा मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। परंतु निर्विघ्नतासे योगका साधन होना आवश्यक है। योग साधन करनेके समय नाना प्रकारके विघ्न उत्पन्न हो सकते हैं। उनका यहां थोडासा विचार करेंगे।

शारीरिक विघ्न सबसे प्रथम देखने योग्य हैं। विविध प्रकारकी बीमारियां, नाना प्रकारके छोटे और मोटे रोग, ज्वर, अजीर्ण, फोडे फुन्सियां आदि सब शारीरिक विघ्न हैं। इनके होते हुए कोई कर्म अच्छी प्रकार नहीं हो सकता। इसलिये रोगोंसे दूर होनेका यत्न करना आवश्यक है। उत्तम हवामें, उत्तम स्थानमें अच्छे मकानमें रहना, योग्य आरोग्य वर्धक भोजन करना तथा व्यायाम आदि करके, शरीरका स्वास्थ्य संपादन करना अत्यंत आवश्यक है।

मनकी उदासीनता दूसरा विघ्न है। कई लोग ऐसे होते हैं कि वे दिलसे किसी अच्छे कार्यको करना चाहते हैं परंतु उनके मनकी अवस्था ऐसी कुछ रहती है कि वे चाहते हुए भी कुछ कर नहीं सकते। यह बडा भारी और भयानक विघ्न है। इस दोषके कारण कई बुद्धिमान मनुष्य निकम्मे हो गये हैं। इस

लिये इसको हटानेके लिये मनके अंदर उत्साही और स्फूर्तिके भाव रखना चाहिए।

अपनी शक्तिके विषयमें कइयोंको संशय रहता है। मैं इस कार्यको कर सकूंगा या नहीं, इसी विषयमें ये लोग शंका करते करते ही समयको व्यतीत करते हैं। यह संशयी स्वभाव बहुत बुरा है, अपने बलका नाश इस संशयसे होता है। बलवान भी संशयके कारण अत्यत निर्बल होता है, बुद्धिमानभी निर्बुद्धि बनता है। जो अपने विषयमें संशय करते हैं वे नाशको प्राप्त होते हैं ऐसा भगवान श्रीकृष्णजीने अपनी गीतामें कहा है। इस प्रकार सबका नाश करनेवाला संशय है इस लिये इसको दूर करना उचित है। निश्चय और दृढ विश्वासको पास करनेसे सब उन्नति सुसाध्य होती है।

संशयका दूसरा एक प्रकार है जिसमे साधकके मनमें यह शंका उत्पन्न होती है कि जो कार्य अथवा उद्योग मैं कर रहा हूं उससे मेरा उत्कर्ष होगा या नहीं। इस प्रकारके संशयके कारण प्रारंभ किये हुए प्रयत्नपरसे उसका विश्वास हट जाता है इसलिये या तो उस कार्यको वह अच्छीप्रकार करनेमें असमर्थ हो जाता है, अथवा उसको छोडकर दूसरा, दूसरेको छोड कर तीसरा कार्य करने लगता है। और अंततक किसी उद्योगको पूर्ण और योग्यरीतिसे निभा न सकनेके कारण उसका सर्वत्र नुकसान होता है। इसलिये साधकका साधन पर पूर्ण विश्वास चाहिए। सब प्रकारकी साधनसामग्री उपस्थित होनेपर भी

संशयके कारण मनुष्य कृतकार्य नहीं हो सकता। इसलिये संशयको दूर करना उचित है।

गलतियां और अशुद्धियां करनेका स्वभाव कइयोंमें इतना होता है कि उसी कारण उनसे साधारण कार्य भी ठीक प्रकार पूर्ण नहीं होसकते। इसलिये सबको उचित है कि वे दक्षताका धारण करके विना अशुद्धि करते हुए हरएक कार्य करनेका अभ्यास किया करें। उद्योग छोटेसे छोटा हो अथवा बड़ेसे बड़ा हो, अपनी ओरसे ऐसी खबरदारी रखनी चाहिए, कि उसके करनेके समय किसी प्रकार भी कोई गलती न हो सके।

आलस्य बड़ा भारी विघ्न है। आलसी मनुष्य किसी कार्यके लिये योग्य नहीं है। इस जगतमें आलसी मनुष्य किसी बातमें उन्नति नहीं प्राप्त कर सकता। अपनी उन्नति करनेके लिये तथा दूसरोंपर उपकार करनेके लिये उद्योगी स्वभावकी बड़ी भारी आवश्यकता है। इसलिये आलस्यको दूर करके पुरुषार्थ और उद्यमी स्वभावको पास करना उचित है। आलस्य ही मनुष्यमात्रका सच्चा शत्रु है। इससे जगतका जितना नाश और घात हो रहा है उतना किसी अन्य शत्रुसे नहीं। आलस्य एक प्रकारका संसर्ग जन्य रोग है। आलसी मनुष्योंके साथ रहनेसे मनुष्य आलसी बन जाता है। इसलिये सबको उद्यमशील पुरुषोंकी ही संगति करना उचित है।

कई लोग ऐसे होते हैं कि आवश्यक कार्य तो करेंगे नहीं, परंतु अन्यही कर्मोंमें अपना सब समय लगायँगे। इस स्वभावसे

बड़ी विपत्ति आती है । क्यों कि उनसे आवश्यक कार्य नहीं होते इस लिये योग्य प्रगति नहीं हो सकती, और अनावश्यक कर्मोंमें सब शक्तिका ऱ्हास होनेके कारण उनको किसीप्रकार भी लाभ हो ही नहीं सकता। इस लिये जो अवश्य कर्तव्य बातें होतीं हैं उनको करनेके लिये ही अपनी सब शक्तिका व्यय करना उचित है।

मनके अंदर भ्रम उत्पन्न होना भी एक बडा भारी विघ्न है। भ्रांत मनुष्य न तो अपने विचार दूसरोंको ठीक प्रकार कह सकता है, न दूसरोंका कहा हुआ उपदेश ठीक प्रकार ग्रहण कर सकता है। किसी कार्यको करनेके समय भ्रांति उत्पन्न होनेसे उस कार्यका ठीक प्रकार बननाही असंभव है। इसलिये योग-साधन करनेवालोंको उचित है कि मनके भ्रमको दूर करें। भ्रांतिसे हर प्रकारका मनुष्यका नुकसान ही है।

प्रयत्न करनेपर भी कइयोंकी योग्य प्रकारसे उन्नति नहीं होती। अर्थात् जिस रीतिसे मनकी एकाग्रता आदि होनी चाहिए उस रीतिसे नहीं होती है। यह एक बड़ा भयानक विघ्न है। तथा चित्तकी एकाग्रता किंचिन्मात्र होनेपर भी अधिक देरतक नहीं ठहरती। सिद्धिका केवल भास मात्र हो जाता है। इससे कइयोंकी अधिक प्रगति नहीं होती। इसके लिये विविध प्रकृति-योंके अनेक कारण होंगे। जो जिसके पास विघ्नरूप कारण होगा उसको दूर करनेका अवश्य यत्न होना उचित है अन्यथा कार्यकी सिद्धि कभी नहीं होगी।

ये सब विघ्न हैं। इनके कारण अवनति होती है । सब पुरुषार्थी मनुष्योंको उचित है कि वे इन शत्रुओंको दूर करनेका उपाय अवश्य करें। जबतक इनमेंसे एक भी रहेगा तबतक कोई सिद्धि नहीं प्राप्त होगी । अब इन शत्रुरूप विघ्नोंके साथियोंका विचार करेंगे।

दुःख करनेका स्वभाव भी शत्रुओंका एक साथीदार है । कई लोग ऐसे होते हैं कि जो सदा रोते ही रहते हैं सर्दी पड़ी तौभी रोते हैं और धूप निकली तो भी रोते रहेंगे । इनको वृष्टिसे भी कष्ट होते हैं और निर्जल प्रदेशमें भी इनको दुःख है । वास्तवमें ऐसे लोगोंके लिये यह जगत नहीं है। इस जगतकी ओर दुःखके भावसे देखना उचित नहीं है। यदि अभ्यास किया जायगा तो हरएक अवस्थामें मनुष्य प्रसन्न चित्त रह सकता है । सदा आनंदित वृत्ति रखनेका अभ्यास करना उचित है । इसप्रकारकी वृत्ति रखनेसे बड़ा आनंद और उत्साह स्वयं उत्पन्न होता है। और प्रत्येक पुरुषार्थ योग्यरीतिसे करनेके लिये मनुष्य योग्य बनता है।

कई लोगोंका मन सदा उदास रहता है। यह दुर्मनकी वृत्ति भी बड़ी बुरी है । इसप्रकारके मनके कारण मनुष्य शक्तिहीन होता है। अपनी इच्छाका थोडासा प्रतिरोध हुआ तो इनका मन क्षुब्ध हो जाता है। इस उदास वृत्तिवाले लोकोंसे कोई पुरुषार्थ ठीक नहीं होसकता । इस उदासवृत्तिके लोकोंको फूलोंकी और देखनेसे भी आनंद नहीं होता, बालकोंकी प्रसन्न वृत्तिसे इनका चित्त प्रसन्न नहीं होता, पहाडों और वनोंके सुंदर दृश्योंसे

इनके मनोंपर उदात्त परिणाम नहीं होता और न इनको प्रातःकाल और सायंकालके रमणीय दृश्य आनंद दे सकते हैं । उदासीनताका अंधेरा इनके मनपर छाया हुआ रहता है जिस कारण योग-साधनके योग्य उत्साही प्रसन्नवृत्ति इनको नहीं प्राप्त होती। ये सदा हताश होकर सब पुरुषार्थोंमे पीछे हटते हैं और उद्यम हीन होनेसे अधोगतिको जाते हैं । इसलिये योगसाधन करनेवाले मनुष्योंको चाहिए कि अपने मनसे दुर्मनताके भावको सदा दूर रखें और उत्साह पूर्ण प्रसन्नता सदा अपने साथ रखें ।

कई मनुष्योंके शरीरमें कंप होता है । शरीर थोडेसे श्रमसे कांपने लगता है । इससे भी चित्तवृत्तिकी एकाग्रता नहीं हो सकती और समाधि प्राप्त होनेमें बडा विघ्न उत्पन्न होता है । कोई साधारण कार्य भी इनसे ठींकप्रकार नहीं हो सकता क्योंकि अवयवोंमें स्थिरता ही नहीं रहती । जब शरीर कांपने लगता है नब मन भी बडा चंचल होता है । इसलिये इंद्रियों, अवयवों और अंगोंमें स्थिरता प्राप्त करनेका अभ्यास करना आवश्यक है ।

कई लोगोंकी प्राणधारणशक्ति कमजोर होती है । जब श्वास अंदर लिया जाता है तब वह वहां स्थिर नहीं रहता, रोकनेपर भी स्वयं बाहर निकलने लगता है । तथा उच्छ्वास बाहिर निकालने पर फिर एकदम अंदर घुसने लगता है । फेंफड़ोंकी कमजोरीके कारण कइयोंको ऐसा होता है । इससे प्राणायामका अभ्यास ठीकप्रकार होनेमें बडा भारी विघ्न होता है । इसलिये इस कम-जोरीको दूर करनेका प्रयत्न होना आवश्यक है ।

ये सब विघ्न, कष्ट और दोष हैं । इनके और भी अनेक भेद हैं । उनको पाठक विचार करनेसे जान सकते हैं । इनको दूर करना चाहिए । इनके दूर होनेके विना मनुष्यकी योग्यता उच्चतर नहीं हो सकती । इसलिये एक एक तत्वका अभ्यास करके उस उस दोषको दूर करना आवश्यक है । जैसे—किसीका शरीर रोगी होगा तो उसको आवश्यक है कि वह अपने शरीरके तत्वका ठीकप्रकार अभ्यास करे और उसको नीरोग रखनेके नियमोंको जाने । अथवा किसीकी आंख बडी कमजोर है तो उसके लिये वह अपनी दृष्टि स्थिर करनेका अभ्यास शनैः शनैः करे, इस प्रकार दृढ निश्चय पूर्वक अभ्यास करनेसे उक्त दोष दूर होते हैं । उक्त सब दोष हरएकमें नहीं होते । कोई दोष किसीमें और कोई किसीमें होता है । जो दोष जिसमें हो उसको उचित है कि वह उसीके निवारण करनेमें सहायता देनेवाले तत्वका अभ्यास शनैः शनैः और दृढ निश्चयसे करता रहे । थोडेही समयमें उसका दोष दूर होगा और उसका चित्त शांत और प्रसन्न होने लगेगा । परंतु यह सब सुसाध्य होनेके लिये परमेश्वरकी भक्ति करना उचित है । परमेश्वर पर दृढ और पूर्ण विश्वास रखना चाहिए और मनमें दृढ संकल्प रखना चाहिए कि सर्व मंगलमय परमेश्वर अपनी अपार दयासे सब विघ्नोंको दूर करेगा, और उसकी भक्तिसे मैं योग्य बनकर संपूर्ण योगकी सिद्धि प्राप्त कर सकूंगा । तात्पर्य परमेश्वरकी भक्तिसे सब संकट दूर हो जाते हैं । परमेश्वर सर्व मंगलमय होनेसे जब भक्तिसे उसका ध्यान किया जाता है तब उसकी सर्व मंगल-

मयता उपासकके मनमें शनैः शनैः आने लगती है और इस कारण उससे सब दोष दूर होने लगते हैं।

और भी उपाय हैं जो साथ साथ करने योग्य हैं। जो बडे प्रसन्न चित्त, आनंदवृत्ति और उत्साह पूर्ण लोग होते हैं उनकी संगतिमें रहना, उनका चालचलन देखना, ऐसे पुरुषोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करना, ऐसे लोगोंके संघोंमें रहना; शरीरसे नीरोग, अवयवोंसे बलवान, मनसे तेजस्वी, चित्तसे प्रसन्न, बुद्धिके चतुर और आत्मामें उत्साह धारण करनेवाले जो होंगे उनसे ही मैत्री करना उचित है। अपने शरीर आदिको दुःख होनेपर जैसे कष्ट होते हैं वैसेही सब प्राणिमात्रको होते हैं ऐसी मनकी भावना धरकर दुःखितोंपर दया करना, दुःखी लोगों और प्राणियोंके कष्ट दूर करनेके लिये सदा तत्पर रहना, अपने काया, वाचा, मन और धन आदिसे दूसरे दुःखितोंके दुःख दूर करनेका यत्न करना, स्वयं दुःखोंसे न डरते हुए दूसरोंके दुःखोंको दूर करना और ऐसे समय जो अपने शरीर आदिको कष्ट होंगे उनको आनंदसे हंसते हुए सहन करना। यह बडा भारी योग है। इस अभ्याससे चित्तकी ऐसी अवस्था होती है कि कितना भी दुःख प्राप्त होनेपर मन बडा प्रसन्न रहता है। यही एक प्रकारका बडा भारी तप है। दूसरोंके दुःख स्वयं अपने आपपर लेने और दूसरोंको सुखी करनेके अभ्याससे मन बड़ा दृढ हो जाता है। सदाचारी, श्रेष्ठ धर्मात्मा लोगोंकी उन्नति देखकर, उनके साथ ईर्ष्या, द्वेष न करते हुए, उनका प्रसन्नताके साथ अभिनंदन करना। मनमें ऐसा विचार

धारण करना कि मैं भी ऐसा महात्मा और धर्मात्मा बनूंगा और श्रेष्ठ हो जाऊंगा। कई लोग दूसरोंकी उन्नति देखकर उन श्रेष्ठ पुरुषोंका द्वेष करने लगते हैं और गिर जाते हैं। दूसरोंके उदयसे आनंदित होना चाहिए।

जो लोग दुराचारी होते हैं उनका विचारही छोड देना उत्तम है। दुष्ट दुराचारी लोगोंका स्मरण करनेसे दुष्टताकी कल्पना मनमें आती है और मनुष्यका मन दूषित होता है। इसलिये इन दुष्टोंके साथ उदासीन वृत्तिसे रहना योग्य है। दुष्ट दुराचारी लोगोंके समीप आनेसे उनका द्वेष न कीजिए। और उनके दूर होनेसे आनंद न मानिये। किसीप्रकार भी उनका विचार न कीजिए। अर्थात् इस जगतमें दुराचारी लोग हैं यह विचार भी आपके मनमें न आवे, ऐसी व्यवस्था कीजिए।

इसप्रकार करनेसे चित्तकी प्रसन्नता होती है। चित्तकी वृत्तियोंका क्षोभ होनेसे बडा कष्ट होता है। इस कष्टकी निवृत्ति करनेके लिये ऊपर कहे अनुसार व्यवहार करना उचित है। मनकी चंचलताको रोकना चाहिए। दुःखसे अथवा सुखसे मनकी चंचलवृत्ति होती है। दुःख होनेकी अवस्थामें तथा सुख होनेकी अवस्थामें मन शांत और प्रसन्न रखनेका अभ्यास करना चाहिए। ऐसा अभ्यास होनेसे मन बड़ा दृढ बन जाता है और उस कारण आत्मामें प्रसन्नता सदा स्थिर रह सकती है। इसलिये इन बातोंका अवश्य विचार करना उचित है।

तपका अभ्यास।

(४)

योगसाधन करनेकी इच्छा जो लोग धारण करते हैं उनको शीत उष्ण आदि द्वंद्वोंको सहन करनेका अभ्यास करना उचित है। आज कलके फैशनके कारण सदा सर्वदा कपडे शरीरपर धारण किये जाते हैं, इससे सर्दीगर्मी सहन करनेका शरीरका अभ्यास कम हो गया है। थोडीसी हवामें उष्णता होनेसे शरीरको कष्ट होता है और थोडीसी सर्दी लगनेसे ज्वर आदि आनेका भय उत्पन्न होता है। यह अवस्था दूर करना अत्यंत आवश्यक है।

शीत जलसे स्नान करनेके अभ्याससे न केवल शरीरका और मनका उत्साह बढता है, परंतु सर्दीके कारण उत्पन्न होनेवाले बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं। वारंवार जुकाम आदि होनेसे जो कष्ट होते हैं, ये सब कष्ट इस अभ्याससे दूर होते हैं।

कोई अभ्यास करना हो, तो शनैः शनैः करना आवश्यक है। अन्यथा बडी हानि हो सकती है। जो लोग बड़ी समृद्धिमें पले हुए होते हैं, गर्म पानीसे स्नान करनेका जिनको अभ्यास होता है, नरम नरम कपडोंमें लिपटे रहनेका अभ्यास जिनको बालपनसे होता है, उनको उचित है, कि वे प्रथम योगसाधन करनेका मनसे पूर्ण निश्चय करें, और शनैः शनैः सर्दी और उष्णता सहन करनेका अभ्यास बढाते जांय। शीघ्रता करनेसे कोई लाभ नहीं होगा।

शनैः शनैः अपना अभ्यास बढानेसे सब कुछ योग्य समयमें साध्य हो सकता है।

उष्ण उदकसे स्नान करनेवाले जो होंगे, उनको उचित है कि आहिस्ते आहिस्ते थोडा थोडा उष्णताका प्रमाण कम करें, और २।३ महिनोंमें शीत जलका स्नान प्रारंभ करें। उष्ण उदकके स्नान करनेसे प्राणायाम करनेके समय बडे कष्ट होते हैं, इसलिये शीतोदकका स्नान अच्छा होता है। क्योंकि शीत उदकके स्नानसे शरीरके (Nerve) ज्ञान तंतुओंमें बडी चेतनता प्राप्त होती है। वीर्यमें स्थिरता और शांतता प्राप्त होती है। इसलिये इसका अभ्यास करना उचित है।

परंतु कई लोग ऐसे अविचारी होते हैं, कि जो अपने शरीरके बलका कोई विचार न करते हुए, अविचारसे ही एकदम ठंडे पानीका स्नान प्रारंभ कर देते हैं। इस प्रवृत्तिसे बडा नुकसान होता है। शरीरका अभ्यास शनैः शनैः करनेसे बडा लाभ होता है परंतु अविचार करनेसे भयानक परिणाम हुआ करता है।

इसीप्रकार उष्णताका सहन करनेका अभ्यास भी बढाना चाहिए। खुले अंगसे थोडी देर धूपमें भ्रमण करनेसे इसका अभ्यास हो जाता है। इस प्रकार करनेसे शरीरका तेज और आरोग्य बढता है, तथा नीरोगता प्राप्त होनेमें सहायता होती है; क्योंकि सूर्य प्रकाश ही सबका आरोग्यवर्धन करनेवाला है।

जो लोक सदा शरीर पर कपडे धारण करते हैं उनको उचित है, कि वे प्रतिदिन अपने को ‘ आतप-स्नान ’ अर्थात् धूपमें—

खडा रहनेका अभ्यास किया करे। शनैः शनैः अभ्यास करनेसे इससे बहुत लाभ होता है। जो लोग केवल बंद मकानोंमें बैठे रहते हैं, उनको इस अभ्याससे अपूर्व आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

शीत उदकके स्नानका अभ्यास प्रथम करना हो तो उष्णताके ऋतुमें करना उचित है, तथा आतप-स्नानका प्रारंभ करना हो तो साधारणतया जिसमें सर्दीगर्मी बहुत नहीं होती, ऐसे समशीतोष्ण कालमें करना उचित है।

शरीरको थोडा कष्ट सहन करनेका अभ्यास भी करना चाहिए। चलना, फिरना, व्यायाम करना, दौडना, तैरना आदि प्रकारके अभ्याससे शरीर स्वाधीन करना चाहिए। आसनोंके अभ्यासके लिये चपल शरीर होनेसे सुभीता होती है। स्थूल शरीर होनेसे बडे कष्ट होते हैं। जिनका पेट बहुत बडा होता है, उनको उचित है कि वे सबसे पहिले अपने पेटको कम करनेका अभ्यास करें। बढ़ा हुआ पेट मृत्युका घरही बन जाता है। योगके आसनोंमें पेटको ठीक करनेवालेभी बहुतसे आसन होते हैं। तात्पर्य शरीरमें चपलता रखना चाहिए।

अति भोजन करना कदापि उचित नहीं, तथा बहुत उपवास करना भी योग्य नहीं। तथापि सप्ताहमें अथवा पंद्रह दिनोंमें एकाध समयका लंघन करना आरोग्यदायक होता है। यदि लंघन न हो सके, तो उस दिन अथवा उस समय लघु आहार, दुग्ध आहार, अथवा फल आहार करनेका अभ्यास करना योग्य है।

दिनमें दो वारही भोजन करनेका अभ्यास करना चाहिए । जो एक भुक्त रहते हैं, उनका अभ्यास सबसे उत्तम है । परंतु जो दिनमें पांच पांच छेछे वार खाते रहते हैं, उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता । इसालिये खानपानके विषयमें अपनी प्रकृतिके अनुसार योग्य नियम करना उचित है । योग साधन कितना भी किया जाय और भोजनका अनियम हो, तो साधन निष्फल हो जाता है । इसलिये भोजनके विषयमें योग्य नियम रखना उचित है ।

इसी प्रकार निद्रा , आराम और व्यायाम आदिका भी योग्य नियम करके उसके अनुसार चलनेका अभ्यास करना चाहिए । अनियम होनेसे योगका साधन नहीं हो सकता । अतिनिद्रा किंवा अति जागरण बहुत बुरा है । अतिनिद्रासे सुस्ती बढती है, और अति जागरणसे खुष्की बढती है । इसी प्रकार बहुत आराम लेनेसे प्रकृति आलसी बनने लगती है, और बिलकुल आराम न करनेसे आरोग्य स्थिर नहीं रह सकता । बहुत व्यायाम करनेसे हृदय आदि अवयव क्षीण होतो हैं, और बिलकुल व्यायाम न करनेसे शरीर शिथिल होता है । तात्पर्य ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि जिससे थोडे कष्ट सहन करनेका तथा शीत उष्ण सहन करनेका शरीरको अभ्यास होवे । नाजुक, कोमल, सुखाभि-लाषी प्रकृतिवाला शरीर नहीं बनाना चाहिए । जो अपने शरीरको सुकुमार और बहुत सुखाभिलाषी बनाते हैं, उनसे कोई कार्य नहीं हो सकता । इसलिये श्रम करनेका अभ्यास करना आवश्यक है । सुखाभिलाषी शरीरसे योगसाधनका दृढ अभ्यास नहीं हो सकता ।

इस प्रकारका सहनशक्तिसे युक्त शरीर बनानेका अभ्यास करना ही 'तप' है। शारीरिक तप अवश्य करना चाहिए। खीलोंके फट्टोंपर बैठना, अथवा उलटे होकर धूम्रपान आदि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। आसुरी स्वभाववाले लोग अपने हाथोंको ऊपरही ऊपर रखकर सुखाते हैं, और इस प्रकारके विविध प्रकार करते हैं। परंतु इस प्रकार भयानक उपाय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

शहरमें अपने योग्य घरमें रहते हुए ही योगका आचरण हो सकता है। और जो ऊपर प्रकार दिये हैं उन योग्य प्रकारोंको शनैः शनैः करनेसे तपका सब आवश्यक अभ्यास हो जाता है। दयालु परमेश्वरने इस शरीरमें ऐसे गुणधर्म रखे हैं, कि इस शरीरको-जैसा रखनेका अभ्यास किया जायगा, वैसा ही शरीर बन जाता है। परमेश्वरकी यही बडी भारी दयालुता है। आप यदि शरीरको बडा नाजुक बनायेंगे, तो यह बडा ही नाजुक बन जायगा, तथा यदि आप इसको हट्टा कट्टा बनायेंगे तो यह हट्टा कट्टा बन जायगा। शरीर बडा सुकुमार और नाजुक होनेसे यहां तक अवस्था आ जाती है कि थोडीसी हवा सर्द हो गई, तो इसको सर्दी होने लगती है और थोडीसी उष्णता हो गई तो इसको असमाधान होने लगता है। इस प्रकारके नाजुक प्रकृतिके मनुष्योंसे न तो योग साधन होगा और न कोई अन्य कर्म हो सकता है। न ये दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकते हैं और न इनको अपने मनकी शक्तियोंका विकास करनेका अधिकार प्राप्त हो सकता है। इसीलिये तप करनेका अभ्यास आवश्यक है।

कष्ट सहन करने योग्य दृढ शरीर बनानेके सब विधि तपके अंदर आ जाते हैं । तप यह है और वह नहीं है, ऐसा कहना बडा कठिन काम है । जो एकको तप हो सकता है, वह दूसरेको नहीं हो सकता है । इस लिये तपका विचार बडा सूक्ष्म है । जो कभी धूपमें भ्रमण नहीं करते उनको दस मिनिट धूपमें नंगे शरीर रहना बडा ही तप हो सकता है, परंतु जो धूपमें भ्रमण करते रहते हैं, उनको घण्टा भर धूपमें रहना कोई बडी बात नहीं है । इसीप्रकार अन्य विषयमें समझलीजिए । यही कारण है, कि तपकी सामान्य कल्पना कही जा सकती है, परंतु उसके बारीक भेदोंका वर्णन करना अशक्य है ।

हरएक अपनी परिस्थितिके अनुसार अपने लिये कौनसा तप करना योग्य है और कौनसा नहीं, इसका विचार कर सकता है । और इसीलिये हम यहां अधिक कुछ भी न लिखते हुए इतनाही कह देते हैं कि, देश, काल, ऋतु, अवस्था आदि सब परिस्थितिके अनुसार जो जिसके लिये योग्य तप हो सकता है वह तप वहां उसको करना चाहिए और उसके आचरणसे अपने शरीरकी कार्य क्षमता बढाना चाहिए । करनेवालेका निश्चय दृढ होनेसे सब कुछ हो सकता है और दृढ निश्चयके अभावमें कुछ भी नहीं बन सकता ।

तपके लिये इंद्रियोंकी लालसा कम करना आवश्यक है । जिव्हा मीठे मीठे पदार्थ खाना चाहती है । परंतु इस प्रवृत्तिसे अर्थात् बहुत मीठे पदार्थोंके अधिक खानेसे सब प्रकारसे शरीर

रोगी होता है। इसी प्रकार अन्य इंद्रियोंके विषयमें सुज्ञ पाठक जान सकते हैं। सब इंद्रियोंको अपने आधीन रखनेका अभ्यास शनैः शनैः करना चाहिए। यद्यपि यह अभ्यास बडा कठिन है तथापि थोडा थोडा प्रयत्न इस दृष्टिसे होना आवश्यक है।

परोपकारके श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठ सत्पुरुषोंका साहाय्य करनेमें तत्परता, तथा सब शुभ कर्म करनेमें ही अपने शरीरका अर्पण करना चाहिए। यदि शरीरको कष्ट सहन करनेकी शक्ति न होगी तो उससे श्रेष्ठ पुरुषार्थ नहीं हो सकेंगे, और श्रेष्ठ पुरुषार्थ न होनेके कारण उस पुरुषकी योग्यता उच्च नहीं होगी। इसलिये उन्नतिकी इच्छा करनेवाले सज्जनको उचित है कि वे अपने अंदर तपके द्वारा सहनशक्तिकी वृद्धि करें।

पूर्वोक्त लेखका मनन करनेसे शारीरिक तपकी कल्पना पाठकोंके मनमें ठीक प्रकार हो सकती है। जो बातें इस लेखमें स्पष्ट रूपसे न कहीं हैं, उनको भी विचारसे सोचकर पाठकोंको जानना चाहिए, क्योंकि मनुष्य विभिन्न परिस्थितिमें रहते हैं, और सबको अपनी परिस्थितिमें रहकर ही उन्नतिका साधन करना चाहिए। हरएक परिस्थितिमें तपकी भिन्नता होनेके कारण स्पष्ट रूपसे तपके नियम लिखना सर्वथा असंभव है। शरीरकी द्वंद्व सहनशक्ति बढाना तपका मुख्य उद्देश है, वह जिस रीतिसे साध्य होगी उस रीतिका अवलंबन करना चाहिए।

यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि साधारण योग स्त्री

पुरुषोंके लिये समानही है । यद्यपि यहां 'मनुष्य, पुरुष' आदि शब्द लिखे जाते हैं, तथापि उनका यह आशय कदापि नहीं कि योगसाधन करना स्त्रियोंके लिये वर्जित है । **योगसाधन करनेसे और विशेषतः विशिष्ट प्रकारके आसन आदि करनेके अभ्याससे स्त्रियोंके शरीरोंपर यह अनुभव देखा है, कि उनके अनेक रोग कम हो जाते हैं, प्रसूतिके समयका भय और कष्ट दूर होता है, और आरोग्य पूर्ण प्रसन्नता प्राप्त होती** है । योगमें कई ऐसे प्रकार हैं, कि जो केवल पुरुषोंको ही करना उचित है, कई ऐसे प्रकार हैं कि जो केवल स्त्रियोंके लिये ही योग्य हैं । इनको छोडकर बहुतसा योगका हिस्सा ऐसा है कि जो दोनोंको समान है । नइ लेखोंमें सुबोध रीतिसे इन सब बातोंको क्रमशः प्रसिद्ध किया जायगा । यहां केवल इतना ही बताना है कि तप आदि प्रकार जैसे पुरुषोंको वैसे स्त्रियोंको भी अपनी स्थिति और अवस्थाके अनुसार अवश्य पालन करना चाहिए । प्राचीन कालमें पुरुष और स्त्रियां भी डेढ़ डेढ़सौ वर्षकी आयु योगाभ्याससे प्राप्त करतीं थीं । परंतु आज कल वह सब अभ्यास बंद हो गया है, और आयु, आरोग्य और बल कम हो रहा है । पुरुषार्थ करनेपर पूर्वके समान अब भी आयु, आरोग्य और बल प्राप्त किया जा सकता है । केवल प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है । यदि पाठक अपने पास दृढ निश्चय और योगके साधनपर विश्वास रखेंगे, तो वे अपनी उन्नति अपने आंखोंसे ही देख सकते हैं । अस्तु ।

यहां तक शरीरके तपकी सामान्य कल्पना लिखी है । अब थोडासा वाचा और मनके तपके विषयमें लिखना आवश्यक है । सत्य बोलनेका निश्चय करना, कदापि जान बूझकर असत्य न बोलना, वाणीका तप है । असत्य बोलनेसे किसी समय लाभ होनेकी संभावना भी होगई, तोभी असत्य बोलना उचित नहीं । इस अभ्याससे वाणीके अंदर एक प्रकारका वीर्य और तेज उत्पन्न होता है । वह तेज झूठ मूठ बोलनेवालेके अंदर नहीं हो सकता । बहुत लोग साधारण अवस्थामें सत्य बोलते ही रहते हैं, साधारण अवस्थामें सत्य बोलना कोई कठिन कार्य नहीं है । जहां विशेष प्रलोभनका प्रसंग आ जायगा वहां सत्यके आग्रहसे अपना वक्तृत्व करना बडा निश्चयका कार्य है । जो ऐसा करता है उसकी वाणीमें ही उक्त तेज बढ जाता है । योगीके वाणीमें जो सिद्धि प्राप्त होती है वह इसी अभ्याससे होती है ।

सत्य बोलना चाहिए ऐसा कहनेसे कोई ऐसा न समझेकी अनावश्यक सत्य बोला जाय । अर्थात् ' किसीका नाक टेढा है ' । यह सत्य है परंतु इसको बार बार कहनेसे कोई प्रयोजन नहीं सिद्ध हो सकता, इतना ही नहीं परंतु उसको—कि जिसका नाक टेढा होता है—बडा कष्ट होता है; इसलिये इस प्रकारका विना कारण कष्ट उत्पन्न करनेवाला सत्य बोलनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । किसीका भला नहीं हो सकता, किसीकी उन्नति नहीं हो सकती और सुननेवालेको उद्वेग हो सकता है ऐसा भाषण करना उचित नहीं है । बोलनेका ढंग प्रिय होवे तथा बोलनेके

तात्पर्यका परिणाम हितकारक होवे, इस प्रकारका सत्य, पवित्र और उच्च विचारोंसे परिपूर्ण भाषण करना चाहिए।

दूसरेके छिद्र, व्यंग, दोष, हीन आचार विचार, आदिके वर्णन करनेका तथा व्यर्थ उपहास करनेका अभ्यास कइयोंको होता है। इस अभ्याससे वाणी मलिन होती है; इसलिये पाठकोंको उचित है कि वे शीघ्रही इसप्रकारके भाषणसे दूर रहनेका यत्न करें। जो सज्जन योगाभ्यास करना चाहते हैं; उनको अपने शब्द निश्चयसे पूर्ण और तुले हुए तथा पवित्र भावसे युक्त बोलनेका अभ्यास करना चाहिए। वाक्सिद्धिका यही बीज है। जो इसको यथावत जानेंगे और प्रयत्नसे योग्य शब्दप्रयोग करनेका अभ्यास सावधानताके साथ करेंगे उनको ही इसकी सिद्धि हो सकती है।

पठन पाठन करनेके विषयमें भी विशेष खबरदारी रखनी चाहिए। जो मर्जी आवे पुस्तक पढना नहीं चाहिए। आजकल अखबार, मासिकपत्र अथवा पुस्तक छापने और बेचनेके लिये कोई किसीका प्रतिबंध नहीं है, इसलिये न केवल अपने देशमें परन्तु सर्वत्र **हीन विचारके पुस्तक बहुत बढ रहे हैं। इसलिये पाठकोंको उचित है कि वे अपने लिये ऐसेही पुस्तक पसंद करें, कि जिनके पढनेसे अपने पास पवित्र विचार बढ सकते हैं।** अपने विचारोंका प्रदर्शन वक्तृत्वसे हो सकता है और अध्ययनसे अपनेमें सुविचारोंका संवर्धन हो सकता है। इसलिये जैसी भाषण करनेके समय खबरदारी करना उचित है। ठीक उसी प्रकार पठन और श्रवणके विषयमें भी सावधानता रखना योग्य है।

अपने अंदर योग्य सुविचार बढाने चाहिए और अपने मुखसे सुवि-चारोंका ही फैलाव करना चाहिए।

इसीलिये वेदोंका स्वाध्याय प्रतिदिन करना आवश्यक है; जो नहीं करेंगे उनकी वाणीका वीर्य बढ नहीं सकता और वाणीकी सिद्धिसे वे वंचित रहेंगे। वेदका स्वाध्याय करनेका निश्चय करना आवश्यक है। और प्रतिदिन कमसे कम एक मंत्र नित्य मनन करनेके लिये रखनेसे बहुतही लाभ हो सकता है। मंत्रके अंदर जो आशय रहता है, उस भावनासे मन परिपूर्ण रखना आवश्यक है। इस प्रकार तप और स्वाध्याय करनेसे बडा लाभ होता है।

शरीर, इंद्रिय, वाणी आदिके विषयमें थोडासा ऊपर कहा है, अब मनके तपके विषयमें थोडासा कहना आवश्यक है। मनके अंदर शुभ भावना रखनेका प्रयत्न होना चाहिए। मन बडा चंचल है, इसलिये यह होना कठिन है, इसमें कोई संदेह नहीं, तथापि इस दिशासे प्रयत्न होना चाहिए। जिस समय अपने मनमें बुरा विचार आ जाय उसी समय मनको कहना चाहिए कि "**हे मन! तू इसप्रकार अयोग्य विचार न कर, मैं तुमको स्वतंत्र भट-कने नहीं दूंगा। तुमको शुभ विचारोंमें ही स्थिर रहना चाहिए।**" आपका मन जिस समय भटकने लगेगा, उस समय आप उसको उक्त प्रकार कहते जाइए और उसको अपना पूर्ण निश्चय बताइए। मनको अपनेसे अलग मूर्तिमान समझ कर आप उससे बातचीत कीजिए। जैसी आप अपने नौकरको आज्ञा करते हैं उसी प्रकार आप अपने मनको कहते जाइए। प्रथमतः आपको

यह कथन उपहासरूप प्रतीत होगा, परंतु यदि आप अनुभव लेंगे, तो इस प्रकार मनको आज्ञा करनेका कितना श्रेष्ठ परिणाम होता है, इसका आपको ही स्वयं ज्ञान हो जायगा।

मनको सदा प्रसन्न रखिए। थोडेसे कष्टसे मनकी चंचलता न होने दीजिए। कैसा भी प्रसंग आ गया तो भी मनको शांत रखनेका अभ्यास कीजिए। यदि आपके मनमें चंचलता होगी तो उसको थोडा थोडा रोकते जाइए। मनमें प्रसन्नता, शांति, धैर्य और उत्साह रखिए। खेद, अशांति, भीति और निरुत्साह न रखिए। मनको ऐसा बनाना आपके आधीन है। और जितना कठिन आप समझते हैं उतना कठिन भी नहीं है। एक बात यहां कहना आवश्यक है कि **यदि मनके अंदर उत्साह बढा-नेका आप प्रयत्न करेंगे तो आपकी शारीरिक व्याधियां भी हट जांयगी। बहुतसीं व्याधियां उत्साह भंग होनेके समय उत्पन्न होतीं हैं।** यह अनुभवकी बात है, इसलिये यहां लिखी है। पाठक इससे विना औषधी आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं; प्रयत्न करके देखिए।

इस प्रकार तप, स्वाध्याय और मनकी प्रसन्नताका अभ्यास करना चाहिए इसके साथ साथ परमेश्वरकी भक्ति करना आवश्यक है क्योंकि सब श्रेष्ठ गुणोंका वह ही स्रोत है। योगसाधन करने-वालेको इस प्रकार अपनी भूमिका तैयार करनी चाहिए।
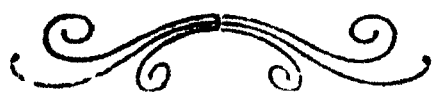
पृष्ठवंशका महत्व ।

(९)

बहुतसे लोगोंका यह ख्याल है कि, केवल प्राणायाम ध्यान धारणा आदि कुछ विशेष प्रकारके अनुष्ठानको ही " **योग-साधन** " कहना योग्य है। परंतु यह विचार ठीक नहीं है। जो योग-साधन विषयपर केवल वक्तृत्व करना चाहते हैं, वे बेशक कहें कि, केवल ध्यानधारणा ही योगसाधन है और व्यवहारके अन्य नियम योगसाधनमें अंतर्भूत नहीं होते। परंतु जो योगसाधनको अपने जीवनमें ढालना चाहते हैं, वे वैसा नहीं कह सकते। इनके लिये अपना हरएक श्वास और उच्छ्वास तथा हरएक हलचल योगके विधिके अनुसार ही करना उचित है। अन्यथा योगकी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

योगका विषय केवल बोलनेका नहीं है, प्रत्युत स्वयं निश्चयपूर्वक आचरण करनेका है। जिसका जैसा इस मार्गके अनुसार आचरण होगा उसको वैसी सिद्धि निश्चयपूर्वक प्राप्त हो सकती है। अनु-ष्ठानमें थोडी भी अशुद्धि हो गई तो सिद्धि उस प्रमाणसे दूर रहती है, इसी कारण अपना सब व्यवहार योगके अनुसार करना हरएकको उचित है।

कई लोग समझते हैं कि, योगका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य ऐहिक व्यवहारके लिये निकम्मा बन जाता है। परंतु यह विचार

बिलकुल ठीक नहीं है। वास्तविक रीतिसे विचार किया जायगा तो पता लग जायगा कि, **योगका अनुष्ठान न करनेसे ही मनुष्य निकम्मा बन रहा है। योगके अभ्याससे मनुष्यकी प्रत्येक शक्ति विकसित होती है।** जैसा फूल फूलजानेसे शोभा बढती है उसी प्रकार योगसाधनके अनुष्ठानसे मनुष्यकी सब आंतरिक और बाह्य शक्ति प्रफुल्लित हो जानेसे मनुष्यका पूर्ण विकास हो सकता है। शारीरिक, वैयक्तिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, कौटुंबिक, गृहविषयक, नागरिक, जातीय, देशीय, प्रांतिय, राष्ट्रीय तथा राष्ट्रांतरीय सब प्रकारके व्यवहार उत्तम प्रकारसे करनेके लिये जो योग्यता चाहिए वह योगसाधनसे निःसंदेह प्राप्त होती है। परंतु सर्वसाधारण जनतामें योगविषयक कल्पनाएं इतनीं संकुचित हैं, कि जिनके कारण ही मनुष्य प्रतिदिन गिर रहा है और इतना होनेपर भी फिर योगसाधनसे डरता रहता है।

हां! इतनी बात सच है कि जो दुराचार और नाना प्रकारके दुर्व्यसनोंके कारण व्यभिचार और अत्याचार किये जाते हैं, उनसे दूर रहना पडता है; इसलिये दुराचारी और दुर्व्यसनी लोगोंकी दृष्टिसे योगाभ्यास कदाचित् अनुष्ठानके योग्य न होगा, परंतु दुर्व्यसनोंके कारण उन्नति होती है, ऐसा जबतक सिद्ध नहीं होगा, तबतक किसीको भी योगसाधनसे दूर रहना उचित नहीं है। क्योंकि सब सत्य, आनंद और श्रेष्ठ सुखोंकी प्राप्ति इसी योगके अनुष्ठानसे होती है।

आजकल दुर्व्यसनोंका प्रचार इतना भयानक रीतिसे हो रहा

है, और किसी देशमें कोई सरकार उसके प्रतिबंधके लिये किसी प्रकारका भी यत्न नहीं कर रही है, यह सचमुच आश्चर्य है ! ! ! सर्वसाधारण जनता अपने हितके विषयमें उदासीन है और किसी सरकारका अपने प्रजाके हित साधन करनेमें योग्य लक्ष नहीं है। यह बात और है कि किसी देशमें एक बातका प्रबंध उत्तम है और किसी देशमें न्यून है। परंतु योगमार्गकी दृष्टिसे सब राष्ट्रोंमें किसी प्रकारका भी उचित प्रबंध नहीं है। हमारे प्राचीन आर्यराष्ट्रमें इस प्रकारका उत्तम प्रबंध था और सर्वसाधारण जनताके दैनंदिनीय व्यवहारमें योगके मार्गका अनुष्ठान न्यूनाधिक रीतिसे राजशासनके द्वारा ही रखा गया था। परंतु वह समय आज नहीं है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको अपने तथा अपने संबंधी और इष्टमित्रोंके आचरण और अनुष्ठानका विचार करने तथा उनमें योगसाधन करनेकी बुद्धि जागृत करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

आजकल नगरों और ग्रामोंमें चाय, काफी, कोको आदि उष्ण पेयोंके व्यसन; सोडावाटर, लेमोनेड, जिंजर आदि शीत पेयोंके व्यसन; तमाखू, सिगार, सिगारेट, हुक्का, बिडी, तमाखूका खान-पान नस्य आदि प्रकार, भंग, चरस आदि धूम्रपानके दुष्ट दुर्व्यसन; भंगकी ठंडाई, ताडी, माडी, मदिरा, आसव, मद्य आदि सब प्रकारके अत्यंत हानिकारक भयानक और विनाशक दुष्ट दुर्व्यसन; जनतामें प्रचलित हो रहे हैं ! ! ! चाय, काफी, सिगारेट आदि तो सभ्य समाजमें भी घुस गये हैं ! ! इनमें हरएक व्यसन बुद्धि,

मन और शरीरका घातपात करनेके लिये समर्थ है, फिर जहां सब मिलकर हमला चढाते हैं वहां पूछना हीं क्या है ! अकाल मृत्यु इनके कारण बढ रहा है परंतु शिक्षित और आशिक्षित कोई भी इसका विचार नहीं करते ! ! ! पाठकगण ! सोचिए तो सही, कि जनताका प्रवाह किस प्रकार विनाशकी ओर जा रहा है !

पाठकोंको यहां इतना हीं बताना है कि, यदि उनके मनमें योगसाधन द्वारा अपनी उन्नतिका साधन करना है तो उनको उचित है वे किसी व्यसनके फंदेमें न फंसे; और अपने मित्रों और संबंधियोंको भी बचावें। शुद्ध जलपान और सात्विक भोजन परिमित प्रमाणमें करनेके साथ योगसाधन करनेसे उत्कृष्ट लाभ हो सकता है। परंतु किसी व्यसनका गुलाम बनकर यदि योग-साधनके प्राणायाम आदि विधि किये जांयगे, तो निःसंदेह रोग बढेंगे और विविध कष्ट प्राप्त होंगे । इस लिये योगमें प्रवृत्त होनेवालेको उचित है कि वह अपने खानपानके व्यवहारमें योग्य दक्षता रखे ।

दीर्घ आयुष्य और नीरोगता यह शारीरिक फल योगसाधनसे होता है, सूक्ष्म विचार करनेवाला उत्साही मन प्राप्त होता है, अतींद्रिय विषयोंका साक्षात्कार बुद्धिसे हो सकता है और विविध आत्मशक्तियोंके अनंत चमत्कार इस योगसाधनसे सिद्ध हो सकते हैं। जगतके संपूर्ण व्यवहार करते हुए मनुष्य उक्त योग्यता प्राप्त कर सकता है। परंतु अपने हरएक व्यवहारकी जांच मनु-

ष्यको करना चाहिए, अन्यथा उन्नति नहीं हो सकती। छोटेसे छोटे व्यवहार और चालचलनका योग और स्वास्थ्यके साथ कितना घनिष्ठ संबंध है इसका थोडासा उदाहरण यहां बताया जाता है। बैठने, खडे होने और सोनेका ही आजके लेखमें विचार करेंगे। सब ही मनुष्य बैठते हैं, खडे होते हैं और सोते हैं, परंतु योगसाधनका इनसे क्या संबंध है, योग इनके विषयमें क्या शिक्षा देता है, इसका विचार बहुत ही थोडे लोग करते हैं, और योगके अनुसार बैठते, खडे रहते और सोते हैं।

पाठक जन कदाचित् आश्चर्य करेंगे कि केवल बैठने, केवल खडे रहने और केवल सोनेमें योगका क्या संबंध है ? इनके संबंधका स्पष्ट पता लगनेके लिये अपने पीठकी हड्डियोंका थोडासा विचार करना चाहिए। पिंडलीकी हड्डी, रीढकी हड्डी, जो पीठमें सिरसे चूतडों तक अनेक छोटे छोटे हड्डियोंका एक स्तंभ जैसा है वह ही जीवनका मुख्य स्तंभ है। योगके प्रत्येक अनुष्ठानका इस मणिस्तंभके साथ अत्यंत निकट संबंध है। आसनोंके अभ्याससे इस स्तंभके प्रत्येक मणिका दूसरे मणिके साथ संबंध सुयोग्य प्रकारसे होकर बीचके ज्ञानरज्जुओंका पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होता है। इन रीडके हड्डीयोंके बीचमेंसे ही सब ज्ञानतंतुओंके जाल फैले हैं और इसी लिये यदि इस पृष्ठवंशमें टेढा पन उत्पन्न हुआ तो वहांके स्थानके ज्ञानतंतु हड्डीयोंके दबावके कारण क्षीण होने लगते हैं, और जब ज्ञानतंतुओंमें क्षीणता आने लगती है तब उस ज्ञानतंतुओंके क्षेत्रमें विविध

बीमारियोंके लिये स्थान बन जाता है। इससे पाठक जान सकते हैं कि इस रीडकी हड्डीयोंके पृष्ठवंशमें किसी प्रकारका अयोग्य टेढ़ापन उत्पन्न न करनेकी कितनी आवश्यकता है। अयोग्य समयमें वृद्धावस्था, विविध प्रकारके रोगोंका शिकार बननेकी स्थिति, मनकी उत्साहहीन अवस्था आदि सब इस पृष्ठवंशके बिगाडसे होती है।

मनुष्य जब खडा होता है अथवा बैठता है तब आप उसके पीठ, कमर, गला और सिरका अवश्य ख्याल कीजिए कि इनकी अवस्था कैसी है। प्रायः मनुष्य चलते हुए उनका सिर आगे झुकता है ऐसा आप देखेंगे, सिरका आगे झुकाव बताता है कि उनके गलेकी शक्ति क्षीण हो गई है। संध्याके इंद्रियस्पर्श मंत्रोंमें " कंठः " शब्द कंठविषयक सावधानीकी सूचना दे रहा है। गलेके व्यायामोंसे गलेमें इतनी शक्ति अवश्य बढानी चाहिए कि वह गला अपने सिरका भार अवश्य सहन कर सके। सिरके बोझसे गलेका आगे झुकाव बता रहा है कि, पृष्टवंशका सबसे महत्वका गलेका भाग अर्थात वहांकी रीडकीं हड्डीयां अपने स्थानसे आगे झुकने लगीं हैं और वहांके ज्ञानतंतुओंपर विनाकारण दबाव पड रहा है और उनकी अवश्य क्षीणता हो रही है।

लिखनेके समय सिरका झुकाव आगे होता है। बैठकर लिखने वाले और कुर्सीपर बैठकर टेबलके ऊपर कागज रखकर लिखने वाले, ये दोनों यदि सावधानता न रखेंगे, तो उनका सिर लिखनेके समय आगे झुकेगा और पीठमें भी आगे झुकाव उत्पन्न

होगा। लिखनेका व्यवसाय करनेवालोंके लिये अत्यंत आवश्यक है कि वे अपनी पीठ, गर्दन और सिर समसूत्रमें रखनेका अवश्य यत्न करें और अपने आपको उक्त हानिसे बचावें। गलेके पृष्ठवंशमें टेढ़ापन आनेसे उदान प्राणके स्थानका बिगाड होता है और इस कारण वहांका स्वास्थ्य निश्चयसे बिगड जाता है। तथा पीठमें अंदरकी तरफ झुकाव होनेसे फेंपडे दब जाते हैं और फेंपडे दब जानेसे प्राणका स्थान संकुचित होता है। जहां प्राणका संकोच होनेका भय है वहां हरएक प्रकारकी बीमारिका अवश्य ही संभव है। यह बात कभी भूलना नहीं चाहिए कि प्राणपर ही हमारा जीवन है।

जब लोक बैठनेके समय सीधे समसूत्रमें न बैठते हुए अंदरकी तरफ झुककर बैठते हैं, और सिरको और भी अंदर झुका देते हैं, तब न समझते हुए वे अपने मृत्युको पास करते हैं। तथा विविध बीमारियोंको मानो निमंत्रण देते हैं। इसलिये योगशास्त्रमें कहा है कि शरीर, गला और सिरको समसूत्रमें रखना चाहिए।

चलनेके समयमें भी आगे झुककर चलनेसे सब पृष्ठवंशपर अस्वाभाविक दबाव पड जाता है। इस प्रकार चलनेका बुरा अभ्यास ठीक नहीं है। सोनेके समय बडा ऊंचा सिरोना सिरके नीचे लेकर सोनेका बहुत बुरा अभ्यास कइयोंको होता है। निद्रामें कि जिस समय शरीरकी समानशक्ति कार्य करती है, और जिस निद्रामें मनुष्यके विविध अत्याचारोंसे उत्पन्न होनेवाली न्यूनताकी पूर्ति करनेका समान प्राणका व्यवहार चलता है, कमसे

कम इस समयमें भी मनुष्यको उचित नहीं है कि वह बडा भारी सिरोना सिरके नीचे रखकर सिरको अपने पृष्ठवंशसे टेढा ही रखनेका प्रयत्न करे ! ! पीठपर सोनेके समय तो वास्तविक सिरानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं, परंतु दायें अथवा बांये अंगपर सोनेके समय कुछ थोडेसे सिरानेकी आवश्यकता होती है, इस समय सिराना न होनेसे सिर उस दांये अथवा बाये भागमें झुकने लगता है। तात्पर्य सिराना पतलेसे पतला अपनी आवश्यकतानुसार रखना उचित है और इसका हमेशा विचार रखना चाहिए कि अपना पृष्ठवंश तेढामेढा तो नहीं हो रहा है।

मनुष्यके पृष्ठवंशमें स्वयं नैसर्गिक एक प्रकारकी वक्रता है। वह वैसी ही रहनी चाहिए। चूतडोंमें पृष्ठवंश थोडासा पीछे होकर कमरमें थोडासा आगे झुककर फिर पीठमें थोडासा पीछे झुकता हुआ गलेमें थोडासा आगे झुककर सिरमें प्रविष्ट होता है। यह नैसर्गिक अतएव स्वाभाविक वक्रता वैसी ही रखनी चाहिए। मनुष्यके प्रयत्नसे इसका सीधेपन हो ही नहीं सकता और होना अभीष्ट भी नहीं है। इस स्वाभाविक वक्रताको छोडकर जो टेढापन मनुष्यकी कृतिसे बन रहा है और जो बैठने चलने सोनेके समय विशेष ख्याल न रखनेके कारण उत्पन्न होता है, वह पृष्ठ वंशका अस्वाभाविक टेढापन बहुत घातक है। प्रत्येक पाठकको इसलिये इस विषयमें सावधानी धारण करनी चाहिए।

योगमें प्रायः प्रत्येक आसन और विशेषतः शीर्षासन, चक्रासन आदि उक्त दोषको ठीक करनेके लिये हीं हैं। अपनी हनुको कंठ

मूलमें लगानेका अभ्यास गलेकी हड्डियोंको ठीक करनेके लिये ही विशेष कर है। पाठक उक्त बातका अभ्यास करके देखें। अपनी हनु अर्थात् ठोड़ीको गलेके मूलमें लगाकर रखें। दोनों बाहुओंसे दो हड्डियां गलेके मूलमें आती हैं और उनके और गलेके मूल संधिमें एक अंगुष्ठ मात्र नरमसा स्थान होता है, वहां अपनी ठोडीको लगाकर थोडी देर स्थिर रहनेका अभ्यास करना चाहिए। इस अभ्यासको करनेपर पाठकोंको स्वयं अनुभव होगा कि गलेके स्थानकी रीढ़की हड्डियां समसूत्रमें हो रही हैं, छाती आगे फैल रही है, फेंफडोंको खुला स्थान प्राप्त हो रहीं है, और पृष्ठवंशमें सीधापन आ रहा है। हनुको कंठ मूलमें रखनेसे इतने लाभ हैं और भी इससे कई लाभ होते हैं।

दोनों बाहुओंसे जो दो हड्डियां कंठमूलमें आती हैं, उनके मध्य स्थानमें हनु (ठुड्डी) को रखनेका अभ्यास करनेसे भी बहुत लाभ होता है। इसको 'कंठ-बंध' बोलते हैं। इस कंठ-बंधके अभ्यासका बहुत लाभ शास्त्रोंमें वर्णन किया है। इससे लाभ होनेका मुख्य कारण इससे पृष्ठवंशका सीधापन हो जाता है, यही है। तथा यदि पाठक इसका ठीक अभ्यास करेंगे तो स्वयं वे अनुभव कर सकते हैं कि, पृष्ठ वंशमें हलकापन इससे प्राप्त होता है। हलकापन ही आरोग्यका चिन्ह है और भारीपन बीमारीका चिन्ह है।

हड्डियोंके छोटे छोटे अनेक टुकडे एक दूसरे पर रहकर यह पृष्ठवंश बनता है। इस सब पृष्ठवंशकी एक ही अखंड हड्डी

नहीं है। प्रत्येक दो हड्डियोंके संधिस्थानको पर्व कहते हैं। प्रत्येक पर्वमें मांसपेशी है। जब अस्वाभाविक दबाव पृष्ठवंशपर पडता है तब यह मांसपेशी बहुत दब जाती है; जब आप पूर्वोक्त प्रकारका कंठ बंध करेंगे, तब आप अनुभव कर सकते हैं कि अपने अस्वाभाविक झुकावके कारण जो दबाव पृष्ठ वंश पर तथा पूर्वोक्त पर्व स्थानकी मांसपेशीपर पड रहा था वह हट गया है और प्रत्येक पर्व ऊपर उठ रहा है और बीचकी मांसपेशीको अच्छा खुला स्थान मिल रहा है। थोडेसे अभ्याससे प्रत्येक पाठक इसका अनुभव देख सकते हैं।

कंठबंधका अभ्यास प्राणायामके साथ संबंध रखता है, इसका वर्णन आगे क्रमशः इस लेखमालामें आ जायगा। यहां इतना ही बताना है कि केवल बैठने खडे रहने, चलने, फिरने, दौडने और सोनेके समय हमें किस बातका अवश्य ख्याल करना चाहिए और पृष्ठ वंशका स्वास्थ्य किस प्रकार रखना चाहिए। इस साधारण व्यवहारके विषयमें भी योग कितनी योग्य शिक्षा दे रहा है इसका विचार यहां पाठक अवश्य करें।

पीठको हमेशा लकडीके समान सरल सीधा रखना चाहिए, ऐसा पाठक यहां न समझें। उसका अस्वाभाविक टेढापन हटाना और स्वाभाविक नैसर्गिक वक्रता तथा कार्यक्षमता स्थिर रखना योगको अभीष्ट है। जो पाठक योगके आसन करते जांयगे उनको इस बातका पूरा अभ्यास हो जायगा, और उनके पृष्ठवंशके सब दोष उक्त अभ्याससे दूर हो जांयगे।

कंठबंधके तीन प्रकार पूर्व स्थानमें दिये ही हैं। उनके अभ्यास करनेके समय विरुद्ध गतिसे गलेको घुमाना भी आवश्यक है। (१) जब आप कंठ मूलमें अपनी हनुको लगायेंगे, तो इसके पश्चात् आपको आवश्यक है कि आप अपनी ठोडीको ऊपर उठाकर गलेको जहांतक हो सके वहांतक ऊपर खेंचिए, और गलेका पृष्ठभाग संकुचित करके सिरका पृष्ठ भाग गलेके पिछले मूलमें लगाइए। ऐसा करनेके समय आपके आंख, नाक और मुख सीधे छतके सन्मुख अथवा आस्मानके सन्मुख हो जांयगे। गलेका सामनेका भाग खींचा जायगा और पीछला भाग दबाया जायगा। (२) जब आप दाईं और बाईं हड्डीयोंपर क्रमशः अपनी ठोडी रखनेका अभ्यास करेंगे उस समयमें भी आपको उसकी विरुद्ध दिशामें पूर्वोक्त प्रकार ही सिरको पीछे ले जाना होगा। अर्थात् दाईं हड्डीपर हनु रखनेके पश्चात् बाईं पीठको और बाईं हड्डीपर हनु रखनेके पश्चात् दाईं पीठको पीछेसे सिर लगाना चाहिए।

इस प्रकारके अभ्याससे न केवल गलेका पृष्ठ वंश परंतु पृष्ठ वंशका सब ही भाग ठीक हो जाता है पाठक गण इतने विव-रणसे जान गये होंगे कि बैठना, खडा रहना और सोना आदि योगकी दृष्टिसे किस प्रकार करना चाहिए। आप यदि दीवारके साथ बैठेंगे तो आपके चूतर, पीठ और सिरका पृष्ठभाग दीवारके साथ ठीक प्रकार लगना चाहिए। यदि आप दीवारके साथ खडे हो जांयगे तो अपने पांवकी एडी, चूतर, पीठ और सिरका पृष्ठ भाग ठीक प्रकार दीवारके साथ लगना चाहिए। जो सिरपरसे

पानीका घडा उठाकर लाते हैं उनका गला, सिर, छाती आदि कैसी समसूत्रमें रहती है आप अवश्य देखिए । सिरपर पानीका घडा उठानेके अभ्याससे भी गला बलवान और समसूत्रमें हो जाता है। यदि इस प्रकार पानीका घडा सिरपर लेना आपकी अवस्थासे अनुचित है ऐसा आपका विचार होगा, तो छोटे तीन लोटे पानीसे भरकर एक पर दूसरा, और उसपर तीसरा सिरपर रखिए और अपने कमरेमें एक वार इधरसे उधर भ्रमण कीजिए। लोटा अथवा पानी न गिरेगा तो आपका खडा रहना ठीक हुआ ऐसा समझिए और वैसा खडा रहनेका अभ्यास कीजिए । अथवा बडे बडे दो चार पुस्तक सिरपर रखिए, उन्हें आप साफेपर भी रख सकते हैं, और इधर उधर भ्रमण कीजिए । कोई पुस्तक आपके सिरपरसे नीचे न गिरेगा तो आप समझिए कि उस प्रकार खडा रहना चाहिए । चाहे केवल दीवारके साथ खडे रह जाइए, पानीका घडा सिरपर धारण कीजिए अथवा पुस्तकें सिरपर उठाइए, जो मर्जी आवे कीजिए। इन बातोंमें कोई विशेषता नहीं है। जो मुख्य बात है, वह समसूत्रमें बैठने और खडे रहनेकी है, उसको जिस किसी प्रकार आप साध्य कीजिए, और सिरको आगे झुकने न दीजिए तथा पीठको सीधा रखिए, छातीका भाग आगे फैलने दें, कंधे पीछे रहें और फैफडोंको अच्छी प्रकार फैल-नेका अवसर दीजिए। बुद्धिका प्रवाह सिरसे पृष्ठवंशमेंसे गुजरकर नीचे तक पृष्ठवंश द्वारा फैलना है उसका प्रतिबंध न होने दें।

इस प्रकार पृष्ठवंशकी धारणा करनेके पश्चात् प्राणायाम कर-नेका अधिकार प्राप्त होता है, अथवा यों समझिए कि प्राणायामसे

पूर्ण फलकी प्राप्ति हो सकती है। प्राणायामका एक स्थूल लाभ प्रसिद्ध ही है, जो रक्तशुद्धिद्वारा शरीरका आरोग्य करता है। इसके अतिरिक्त जो अन्य लाभ हैं उन सबका वर्णन यहां संपूर्ण रीतिसे किया ही नहीं जा सकता। तथापि सारांशरूपसे उसका स्वरूप यहां बताया जाता है।

उक्त पृष्ठवंशके साथ ज्ञानतंतु सब शरीरमें फैले हैं। जब पृष्ठवंशसे ज्ञानतंतु बाहिर आते हैं तब कुछ अंतरके पश्चात् अनेक ज्ञानतंतुओंकी एक एक ग्रंथि बनी होती है। योगकी उच्च भूमिका की सिद्धि इन ग्रंथियोंकी स्वाधीनतापर निर्भर है। इसको योगमें " ग्रंथिभेद " कहते हैं। प्राणायामसे ही ग्रंथिभेदन होता है और दूसरा कोई साधन इस कार्यके लिये नहीं है। " ऊर्ध्व भागमें जिस अश्वत्थ वृक्षका मूल है और जिसकी शाखाएं निम्न भागमें फैलीं हैं " (भग. गीता. अ. १५) यह श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा हुआ वृक्ष यही है। इसके मूल मास्तिष्कमें हैं और शाखाएं पृष्ठवंशद्वारा निम्न भागमें सब शरीरमें फैलीं हैं। पृष्ठवंशके प्रत्येक हड्डीके सन्मुख एक एक ग्रंथि है और इस ग्रंथिकी स्वाधीनतासे बड़ी विलक्षण सिद्धियां होतीं हैं। उदाहरणके लिये नाभिभागसे थोडे ही ऊपरके स्थानमें " सूर्यग्रंथि " है। जब प्राणायाम द्वारा इस ग्रंथिकी स्वाधीनता होती है तब अव्याहत जीवनप्रवाह शरीरमें शुरू होता है, योगी लोग कहते हैं कि इच्छामरणकी सिद्धि इससे प्राप्त होती है। योगी अपनी पूर्ण योगायुकी समाप्ति तक अपनी इच्छासे जीवित रह सकता है। जो जो सत्पुरुष इच्छा

शक्तिके चमत्कार करते रहते हैं, उनको इस सूर्यग्रंथिकी स्वाधीनतासे बलकी प्राप्ति होती है।

प्राणायामसे इस प्रकार प्रत्येक ग्रंथिके भेदके द्वारा विलक्षण सिद्धि प्राप्त होती है। इस योगबलकी प्राप्तिके लिये पृष्ठवंशकी समसूत्रमें स्थिति चाहिए। पृष्ठवंशकी समसूत्रमें स्थिति होनेके लिये नित्यका ही अभ्यास चाहिए। चलना, बैठना, सोना, खडा होना आदि काम करनेके समय अपने पृष्ठवंशकी समसूत्रता रखनेका यत्न होनेसे एक वर्षमें पृष्ठवंश ठीक हो जाता है और पूर्व समयकी न्यूनता हट जाती है।

जो लोग योगाभ्यास करना नहीं चाहते उनको भी पृष्ठवंश समसूत्रमें रखनेके अभ्याससे बड़ा आरोग्य प्राप्त हो सकता है। पृष्ठवंश ठीक प्रकार रखनेसे रोग स्वयं हट जाते हैं। इसलिये सर्वसाधारण जनताको भी इसका अभ्यास लाभदायक हो सकता है। जो प्राणायामादिक करेंगे उनको अधिक लाभ होगा परंतु जो प्राणायाम नहीं करेंगे उनको भी उक्त अभ्याससे बडा लाभ पहुंच सकता है। छोटे छोटे बच्चोंको जबतक वे स्वंय बैठना नहीं चाहते जान बूझकर जबरदस्ती बिठलानेके प्रयत्नसे उनके पृष्ठवंशमें बिगाड़ होता है, जिसका परिणाम उनको आयुभरतक भुगतना पड़ता है। माता:पिता इस बातका अवश्य ख्याल रखें। तथा अन्य पाठक अपने इष्टमित्रोंके बैठने खडे रहने आदिके विषयमें इस योगदृष्टिसे विचार करें और अपने कर्तव्यको जानें।

सब शक्तियोंसे योग।

(६)

(१) " कैवल्य " स्थिति प्राप्त करना योगसाधनकी अंतिम सिद्धि है। " कैवल्य " का अर्थ " केवल स्थिति " है। दूसरेका संबंध छोडना और अपने ही बलसे स्वयं स्वावलंबन पूर्वक रहना, तथा केवल अपनी शक्तिका ही अनुभव लेना, इस अवस्थामें होता है। साधारण स्थितिमें मनुष्य सब सुखोंके लिये दूसरोंपर निर्भर रहता है। जहां दूसरेका आश्रय करना होता है वहां पराधीनता है और जहां पराधीनता है, वहां अवश्य दुःख होना ही है। इसलिये पूर्ण स्वातंत्र्यका अनुभव योगसाधनसे होता है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरोंके आश्रयसे क्रमशः जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंका अनुभव प्रत्येक जीव ले रहा है। अर्थात् ये तीनों अवस्थाएं जीवको शरीरके आश्रयसे प्राप्त होतीं हैं इसलिये इनमें पराधीनता है ओर पराधीनताके कारण इन तीनों अवस्थाओंमें सुखके साथ साथ अनिच्छित दुःखकी प्राप्ति भी होती है। इसलिये इन तीनों शरीरोंके विना अपनी निज अवस्थाका अनुभव लेना और वहांके निज स्वातंत्र्यका पूर्ण आनंद प्राप्त करना हरएक जीवका परम अभीष्ट होना स्वाभाविक ही है। इस अभीष्टके साधनका नाम योगसाधन है। कैवल्य

अवस्था अंतिम ध्येय है, अर्थात् पूर्ण स्वातंत्र्य ही अंतिम ध्येय है। इसको "**निरालंब अवस्था**" भी कहते हैं। किसी अन्यका अवलंबन इस अवस्थामें करना नहीं होता है। परंतु आत्मा अपने ही निजरूपमें स्वतंत्रताका अनुभव करता रहता है। इसको "**आत्मयोग**" कई विद्वान् इसलिये कहते हैं, कि इस अवस्थामें सर्व व्यापक परम आत्मतत्वका शुद्ध संबंध होनेसे इस अवस्थामें आत्माका परमात्माके साथ योग होता है। परंतु यह बात अंतिम अवस्थाकी होनेके कारण इस अवस्थाके विषयमें हम कुछ भी लिख नहीं सकते। स्वानुभव होनेके विना लिखना योग्य भी नहीं है। जो भाव केवल तर्कसे तथा ग्रंथ-प्रमाणसे जाना जा सकता है वह ऊपर दिया ही है। "**वैदिक धर्म**" के कई पाठक इस अंतिम अवस्थाके विषयमें प्रश्न पूछते रहते हैं, इस लिये यहां उनको इतना ही निवेदन है कि इस श्रेष्ठतम भूमिकाका अनुभव ज्ञान यहां किसीको नहीं है। इसलिये उनके प्रश्नोंका उचित उत्तर दिया ही नहीं जा सकता। जब कभी वैसा सुयोग आ जायगा उस समय देखा जायगा। तब तक हम सब मिलकर निचली श्रेणियोंमें ही रहकर अपने अपने अनुभवकी बातें करेंगे। और परस्परकी सहायतासे अपना अपना मार्ग आक्रमण करेंगे।

(२) **सुषुप्ति-योग**—पूर्वोक्त "आत्मयोग किंवा तुर्यायोग" का अनुभव जिनको नहीं है उनको सुषुप्ति अर्थात् गाढनिद्राका तो अनुभव है। सब प्राणिमात्रको इस सुषुप्तिका अनुभव है।

इस सुषुप्तिसे सब नीचेकी अवस्थाओंका सबको अनुभव है। इस लिये इन अवस्थाओंका उपयोग योगसाधनकी दृष्टिसे करना हरएकका कर्तव्य है। इनमेंसे हरएक अवस्थामें जिस रीतिसे योगसाधन किया जा सकता है, उसका संक्षेपसे इस लेखमें विवरण करना है। हमको जितनीं अवस्थाएं प्राप्त हैं उन सबमें सुषुप्ति अवस्था एक प्रकारसे ब्रह्मरूपताकी अवस्था ही है। सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें ब्रह्मरूपता होती है। इस कथनपर पाठक श्रद्धा रखें और सुषुप्तिको ब्रह्मरूपावस्था समझें। अनायाससे इस अवस्थामें ब्रह्मानंदकी प्राप्ति होती है। शरीरकी भयानक रोगकी अवस्था भी इस समय भूली जाती है। यदि पाठक इस अवस्थाके अनुभवका विचार करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि, आत्माका शरीरसे भिन्नत्व इस अवस्थाके विचारसे ज्ञात हो सकता है। निद्रा किस प्रकार आती है, यदि उस संधि अवस्थाका अनुभव लेनेका पाठक यत्न करेंगे, तो एक वर्षके अंदर उनको स्वयं अनुभव होगा कि, उनका आत्मा शरीरसे भिन्न है। फिर इस विषयमें कोई शंका रहेगी ही नहीं। जागृतिकी समाप्ति, और निद्राका प्रारंभ इस संधिसमयमें जो विचार मनमें रहता है वह ही पुनः जागृत होने तक स्थिर रहता है, इतना ही नहीं परंतु वह अपने स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरोंमें कार्य करता रहता है। इस शक्तिका पाठक उपयोग कर सकते हैं। उक्त संधिसमयमें प्रतिदिन बुरा भला विचार रहता ही है अर्थात् बुरे भले विचारके अनुसार शरीरपर बुरा भला परिणाम भी होता रहता

है। इसलिये उक्त संधिसमयमें शुभ विचार ही स्थिर करनेक यत्न करना अत्यंत आवश्यक है। जिस समय शरीरमें कोई बीमारी रहती है, उस समय सोनेके पूर्व यदि पूर्ण आरोग्यका विचार मनमें स्थिर करनेका यत्न किया जायगा, और '**मैं बीमार नहीं हूं**' इस आरोग्यमय सुविचारके साथ यदि गाढ निद्रा आ जायगी, तो दूसरे दिन जागृतिके साथ ही पूर्व दिनकी बीमारी दूर होनेका अनुभव होगा। "**मन ही अमृत है**" इसलिये सुविचारके साथ मन आरोग्य स्थापन कर सकता है। सुषुप्तिमें सुविचारकी स्थापना करनेका नाम ही सुषुप्तियोग है। जो ऊपर बात कही है, उसका पाठक भी अनुभव ले सकते हैं। संधिसमयके विचारोंपर अपना स्वत्व रखनेके लिये बहुत अभ्यास चाहिए। परंतु इसका बहुत प्रकारसे अनुभव लिया है और कइ-योंके शरीरपर यह बात अजमाई है, इसलिये जो पाठक निश्च-यसे प्रयत्न करेंगे वे भी इस बातका विना संदेह अनुभव कर सकते हैं। इस संधिसमयमें शुभ विचारको स्थिर रखनेका सुलभ उपाय यही है, कि उत्तमसे उत्तम मंत्रको अर्थज्ञानपूर्वक जपते जपते सो जानेका यत्न करना। इस प्रकार यत्न करते करते अनुभव होगा कि, दूसरे दिन प्रातःकाल वही मंत्र आपही आप मनमें खडा रहता है। जब ऐसा होगा तब आप समझिए कि उक्त मंत्रका विचार रातभर आपके मनमें स्थिर रहा था। अनुभवके लिये आप आरोग्यवर्धक अथवा बलवर्धक मंत्र लीजिए और प्रतिदिन उसी एक मंत्रका जप कीजिए। यह जप बिस्तर-

पर सोते सोते ही करना चाहिए, और साथ साथ जहांतक हो सके वहांतक किसी अन्य अवस्थाका ध्यान भी नहीं करना चाहिए। कोई अन्य सुविचार अथवा किसी सत्पुरुषका जीवन भी आप इस समय चिंतनके लिये ले सकते हैं। इस प्रकार करनेके जो अन्य फल हैं, उनका विचार किसी अन्य समय किया जायगा, इस एक बातके अनुभवसे पाठक अपने मनकी शक्तिका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, और थोड़े ही प्रयत्नसे यह बात साध्य हो सकती है।

(३) **स्वप्नयोग**—पूर्वोक्त सुषुप्तियोगके साथ ही स्वप्नयोगका अत्यंत निकट संबंध है। साधारण अवस्थामें स्वप्नों पर हमारी इच्छाका परिणाम नहीं होता। मनमाने स्वप्न होते रहते हैं। परंतु स्वप्नोंके दृश्योंसे मनकी अच्छी अथवा बुरी अवस्थाका पता लग सकता है। जब स्वप्न अच्छे आते होंगे उस समय समझिये कि मन अच्छे विचारमें ही रम रहा है। परंतु जब स्वप्न अश्लील और बुरे ही आते हैं, उस समय समझिये कि आपके मनमें कुविचार अवश्य आते हैं। दूसरे लोग आपको अच्छा समझते हैं अथवा बुरा समझते हैं, इस बातसे आपका अच्छा अथवा बुरा होना निश्चित नहीं हो सकता, परंतु आपके स्वप्नोंसे आप अपनी परीक्षा कर सकते हैं। स्वप्नमें आप अपने असली मनके स्वरूपमें रहते हैं। जैसे वास्तविक आपके विचार होते हैं, वैसे आपके सपने होते हैं। इसलिये सुविचार करनेसे

स्वप्नयोग सिद्ध होता है । यदि आप सदा ही अच्छे विचार मनमें रखेंगे, अच्छे विचार सुनेंगे, अच्छे विचारोंके पुस्तक पढ़ेंगे, तात्पर्य अपना मन अच्छे विचारोंसे परिपूर्ण रखेंगे तो आपको कभी बुरा स्वप्न नहीं आ सकता । योगसाधन द्वारा यदि आपको अपनी मानसिक शक्ति बढ़ानेकी सदिच्छा है, तो आपको उक्त प्रकार अवश्य ही अभ्यास करना चाहिए । प्रत्येक दिन निद्राके प्रारंभमें और अंतमें प्रत्येक मनुष्य स्वप्नका अनुभव करता ही है। बीचमें भी स्वप्न दिखाई देते हैं । परंतु बहुत थोडे स्वप्नोंका स्मरण होता है । जिनका स्मरण होता ह, उनका ही विचार करना है। इसके अभ्यासके लिये सुविचार साधनका प्रतिसमय आपको ख्याल रखना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त आप अपनी इच्छानुसार अपने लिये एक आदर्श पुरुष मनमें धारण कीजिए। यदि ब्रह्मचर्य पालनकी इच्छा हो तो भीष्मपितामहके तरफ ध्यान रखिए, दृढव्रत, सत्यप्रिय होना है, तो श्रीरामचंद्रकी कल्पना जागृत रखिए, अथवा इसी प्रकार बलवान बनना हो तो भीमका स्मरण कीजिए और इनके चरित्रोंमें जो जो मुख्य उच्च बात होगी उसका ऐसा मनमें निदिध्यास कीजिए कि उसका अनुभव आपको स्वप्नमें वारंवार आजावे । अपने आपको वैसा बनानेका यत्न कीजिए । और जो गुण इस प्रकार आप अपने आपमें धारण करना चाहते हैं, उस सद्गुणकी पराकाष्ठा परमात्मामें है, ऐसा समझकर उस गुणसे युक्त परमात्मा आपका परम आदर्श है, इस बातको पूर्णतासे मनमें धारण कीजिए। इस

प्रकार करनेसे आपके स्वप्न भी उसी गुणसे युक्त होंगे । जब ऐसा होगा, तब आप समझिए कि स्वप्न योगमें आपको सफलता होने लगी है । जो बात यहां लिखी है वह कोई अशक्य नहीं है, इसलिये हरएक मनुष्य पांच छै मासमें इसका कुछ न कुछ अनुभव ले सकता है । अपने सूक्ष्म देहको परिशुद्ध करनेके लिये इस योगका अभ्यास करनेकी अत्यंत आवश्यकता है, इसलिये यथावकाश पाठक इसको करते रहेंगे, तो उनको अवश्य ही लाभ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

(४) **बुद्धियोग**—तर्क वितर्कसे परे श्रद्धा भक्तिसे युक्त अपनी परिशुद्ध निश्चयात्मक ज्ञानधारक शक्तिका नाम बुद्धि है, अथवा बुद्धिका यही अर्थ यहां अभीष्ट है । जो बलवान विश्वास पूर्वक निश्चयात्मक धारणा होती है वह बुद्धि यहां अभिप्रेत है । संशयित मन ही सदा घात करता है । निश्चयात्मक दृढ़ भावना-मय श्रद्धायुक्त बुद्धि ही उन्नतिकी साधक है । जो योगसाध-नकी विलक्षण सिद्धियां होतीं हैं वह सब इसी बुद्धि योगसे होती हैं । श्रद्धा भक्ति इसमें विशेषता रखती है श्रद्धासे, तर्कके विना, जो भावना मनमें स्थिर होती है, वह फलवती होती है । यह योगका सिद्धांत है । परमेश्वरके विषयमें अटल विश्वासमय श्रद्धा मनमें स्थिर रखनेका अभ्यास जिस रीतिसे आप कर सकते हैं; उस रीतिसे आप कीजिए । इतनी परमात्मविषयक श्रद्धा आपके मनमें उत्पन्न होवे, कि जो दूसरोंके तर्क वितर्कसे हटने न पावे । आपके दृढ़ अभ्याससे यह बात कालांतरमें सिद्ध हो सकती है । यद्यपि

आप समझते होंगे कि आप आस्तिक हैं और आपका परमेश्वर पर भरोसा है, परंतु तर्कसे मानी हुई बात यहां कामकी नहीं है। अपना अस्तित्व जिस प्रकार आप विना प्रमाणके जानते और मानते हैं, उसप्रकार प्रमाणांतरके विना सब शुभगुणोंकी पराकाष्ठाका आधार सर्व मंगलमय परमात्मा है, ऐसा तर्कहीन पूरा विश्वास मनमें स्थिर रखनेका यत्न कीजिए। इस बात पर योगकी सिद्धि निर्भर है, इसलिये कोई साधक इस विषयमें संदेह न धारण करे। जो तर्कसेही सब बातें जानना चाहते है उनको उचित है, कि वे इस विषयमें प्रथम जितना तर्क करना है, कर लें। जब तर्ककी गति कुंठित हो जायगी तब उसके परे ही परमात्माका अनुभव होगा। जब तक तर्ककी गड़बड़ चलती है, तब तक बुद्धियोग साध्य होता हीं नहीं है, क्योंकि केवल श्रद्धासे ही इसकी सिद्धि होनी है; इसलिये जो पाठक इस बुद्धियोगमें प्रगति करना चाहते हैं उनको उचित है, कि वे अपने अंदर निर्वितर्क श्रद्धा उत्पन्न करनेका यत्न करें ; प्रकृतिके भेदसे इसके उपाय भी भिन्न होंगे और पाठक अपने ज्ञानके अनुसार इसका उपाय कर सकते हैं। सर्व सामान्य उपाय इतना ही है, कि परमात्माको पूर्ण मंगलमय समझ कर और उसको सर्वत्र देखनेका अभ्यास करते हुए सर्वत्र उसका मंगल कार्य ही देखनेका यत्न करना चाहिए। जब परमात्मविषयक उक्त श्रद्धा होगी तब आपके आनंदको पारावार ही नहीं रहेगा। परंतु यह निर्वितर्क श्रद्धा मनमें स्थिर करनेका अहर्निश प्रयत्न करना चाहिए तभी इसकी सिद्धि हो सकती है।

(९) **चित्तयोग**—चिंतन करनेके इंद्रियको चित्त कहते हैं। जिसकी प्राप्तिकी इच्छा होती है, उसका चिंतन यह चित्त करता रहता है। व्यसनी लोग अपने व्यसनके पदार्थ प्राप्त न होनेके समय उन पदार्थोंका जिस आतुरतासे चिंतन करते हैं, और उनको जैसा उन पदार्थोंके विना दूसरा कोई ख्याल सूझता भी नहीं, उसी प्रकार योगसाधन करनेवालोंको अपने प्राप्तव्यका ध्यान होना उचित है। जो आपका अभीष्ट योगसाधनसे प्राप्तव्य होगा, उसका सदा चिंतन आपको करना होगा। अथवा अभ्यास करनेके लिये कोई अच्छा विचार आप अपने लिये प्रति-मास चुन सकते हैं। "मैं आत्मा हूं और मैं शरीरसे भिन्न हूं।" इसी बातका सदा ध्यास करनेसे अथवा इसीके चिंतनसे अपना शरीरसे भिन्न अस्तित्व अनुभवमें आता है। परमेश्वरके एक एक गुणका नित्य चिंतन करनेसे उस गुणका विकास अपने अंदर होने लगता है। चित्तसे जिसका चिंतन होगा उसके समान गुण-धर्म प्राप्त होते हैं। इसलिये सदा सावधान रहना चाहिए और चित्तमें कोई बुरा विचार ठहरने नहीं देना चाहिए। आपको पता हो या न हो आपका चित्त किसी न किसी बातका अवश्य ही सदा चिंतन करता रहता है। यदि अच्छे विचारका चिंतन न होगा, तो बुरे विचारका चिंतन अवश्य ही होगा। इसलिये अपने चित्तको स्वाधीन करके उससे ठीक उन्नति साधक विचारोंका ही चिंतन करवाइए।

(६) **इच्छायोग**—जिससे मनुष्य किसीकी प्राप्ति अथवा निवृत्तिकी इच्छा करता है उसको इच्छाशक्ति कहते हैं। इच्छाका बल इतना महान है, कि इस इच्छाशक्तिकी सहायतासे मनुष्य हरएक प्रकारके महान महान पुरुषार्थ कर रहा है। मनुष्य बुरा हो वा अच्छा हो, दोनोंके पास प्रबल इच्छाशक्ति रहती है, एक उसको बुरे कार्यमें लगाता है और हीन बनता है, और दूसरा उसीको श्रेष्ठ कर्मोंमें लगाकर उन्नत होता है इसलिये कोई यह न समझे कि अपने पास इच्छाशक्ति नहीं है। हरएकके पास इच्छा शक्ति है, परंतु थोड़े ही सत्पुरुष ऐसे हैं कि जो इस शक्तिको एकत्रित करके उत्तम पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये ही प्रयुक्त करते हैं। यदि प्रयत्न किया जाय, तो हरएकको यह साध्य हो सकता है, थोड़ेसे प्रयत्नकी अपेक्षा है। थोड़ेसे प्रयत्न करनेपर "इच्छा" से बडे बडे कार्य किये जा सकते हैं। बुराईसे बचना केवल इच्छा शक्तिके बलपर ही निर्भर है। यदि आप योग्य रीतिसे इच्छा शक्तीका प्रयोग करेंगे तो आप विविध बीमारियोंसे बच सकते हैं। बीमारीकी संभावना होनेपर आप अपनी सब शक्ति एकत्रित कीजिए और कहिए कि "**यह शरीर मेरा स्वराज्य है, मेरी इच्छा नहीं है कि कोई बीमारीके विजातीय रोगबीज यहां आकर बसें और अपना अधिकार इस मेरे शरीरमें जमावें**" इस प्रकार आप अपनी प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा रोगोंके आक्रमणसे बच सकते हैं। जो बात आप अपनी इच्छा शक्तिसे इस शरीरक्षेत्रमें करना चाहेंगे वह बात

यह बन जायगी और जो नहीं करना चाहेंगे वह नहीं होगी इसी तरह हो रहा है, परंतु आपको पता नहीं है। आप अपनी इच्छा शक्तिकी परीक्षा करना प्रारंभ कीजिए, तो आपको पता लग जायगा कि इतनी प्रबल शक्तिका आप अपने ही घात करनेमें कैसा उपयोग कर रहे हैं। इसलिये अपनी इच्छाको अपने स्वाधीन रखिए। जो बात आप करना नहीं चाहते वह बात अपनी इच्छामें आ गई तो उसको दूर कीजिए और फिर भले सुविचारको अपनी इच्छामें धारण कीजिए। यह ही इच्छा योग है।

(७) **मानस योग**—अच्छे और बुरेका विचार करना मनका धर्म है। मनन करनेवाले इंद्रियको ही मन कहते हैं, और मनकी शक्तिको अपने आधीन करना तथा उसको अपनी उन्नतिके कार्यमें लगाना 'मानस योग' कहलाता है। हरएकका मन कुविचार और सुविचार करता रहता है। इस मनको एकाग्र करनेका अभ्यास करना चाहिए। आप चाहे किसी पदार्थ पर एकाग्र कीजिए अथवा शब्दपर कीजिए। मनकी एकाग्रता करनेके अनेक साधन होंगे। इस लेखमालामें उनका यथायोग्य विचार क्रमशः आ जायगा ! यहां इतना ही कहना है कि जबतक मन एकाग्र नहीं होता, तब तक उससे आप अपनी उन्नति नहीं कर सकते। मन ही परतंत्रता और स्वतंत्रताका हेतु है। जब आप अपने मनको एकाग्र कर सकेंगे, तो आपको अपने मनकी विलक्षण शक्तिका पता लगेगा। मनकी चंचलताके कारण आपकी

सब शक्तिका अपव्यय हो रहा है। इसलिये आपको उचित है, कि जिस किसी रीतिसे आप अपने मनको एकाग्र कर सकेंगे उस रीतिका अवलंबन करके आप अपनी शक्तिको संगृहीत कीजिए। मनका ढीलापन ही आपकी अवनतिका हेतु है। आप अपनी इच्छानुसार मनसे मनन करनेका यत्न कीजिए। जो विचार आप चाहते हैं वह ही मनमें आना चाहिए और मन आपका आज्ञाकारी बनना चाहिए। मन आपके स्वाधीन होनेसे न केवल मुक्तिके मार्गमें आपकी प्रगति होगी, परंतु व्यवहारके इष्ट कृत्योंमें भी आप अपना प्रभाव बता सकेंगे। इस लिये मनकी एकाग्रतासे आपका सर्वतोपरि लाभ होना है। इसकी सिद्धिके लिये आप ऐसा अभ्यास कीजिए कि जिस समय जो कार्य आप करेंगे उसीमें मनको परिपूर्ण लगाइए, और उस समय दूसरा कोई विचार पास आने न दें। इस रीतिसे आप अपना व्यवहार करते करते ही आप अपने मनको एकाग्र कर सकेंगे। आप चाहे अन्य उपायोंका अवलंबन कर सकते हैं। सिद्धिकी बात मुख्य है।

(८) **अहंकार योग**—अहंकार शब्दसे यहां "घमंड" इष्ट नहीं है। घमंड बहुत ही बुरी है; घमंडसे अवनति निश्चित होती है। परंतु "**अहंकार**" शब्दसे और दूसरा भाव व्यक्त होता है। "**मैं आत्मा हूं, मैं अजर अमर हूं, मैं शरीरसे भिन्न हूं, मेरी शक्तियां नेत्रादि इंद्रियोंमें जाकर कार्य कर**

रहीं हैं। मैं योगसाधन द्वारा अपनी योग्य उन्नति अवश्य प्राप्त करूंगा। मैं विघ्नोंको दूर करूंगा और अवश्य ही पुरुषार्थ करता रहूंगा। " इत्यादि भाव मनमें निश्चयात्मक वृत्तिके साथ धारण करना चाहिए। तभी सिद्धि होती है। इनमें 'अंह' अर्थात् 'मैं' शब्दका प्रयोग होता है। "मैं" यह करूंगा, अवश्य ही करूंगा, इस प्रकार 'मैं-पन' की धारणा करनी होती है, इस लिये इस वृत्तिके अभ्यासको "अहंकार योग" कहते हैं, घमंड यहां नहीं होती, परंतु स्वकीय शक्तिके विषयमें निश्चयात्मक वृत्ति होती है। प्रथम पाठकोंको उचित है कि वे घमंड छोड़कर इस प्रकारकी निश्चयात्मक वृत्ति धारण करके "मैं अवश्य योगसाधन करूंगा, मैं नीरोगता और दीर्घायु प्राप्त करूंगा, मैं धार्मिक जीवन व्यतीत करूंगा, इ०" निश्चयात्मक वृत्ति धारण करनेका अभ्यास करते रहें। "मेरेसे यह होगा या न होगा" इस प्रकारकी संशयित वृत्तिको कभी अपने पास न आने दें। इस प्रकारके अहंकार योगसे योगमार्गमें अच्छी प्रगति होती है। कमसे कम योगसिद्धियां प्राप्त करना हो तो इस वृत्तिका आश्रय करना चाहिए। सिद्धियां बुरी नहीं होतीं सिद्धियोंमें फंसना बुरा होता है। सिद्धि प्राप्त होनेपर उस शक्तिका आप परोपकारके लिये सदुपयोग कर सकते हैं। इस प्रकार करनेसे अधोगतिका भय हट जाता है। सिद्धियोंका दूसरा एक लाभ है कि साधकको अपनी उन्नतिका अनुभव आ जाता है, और छोटी छोटी सिद्धि प्राप्त होनेसे भी योगसाधनका मार्ग केवल

काल्पनिक नहीं है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। जब ऐसा हो जावे तब चाहे अपना क्रम उपासक बदल सकता है। योग-मार्गमें प्रारंभसे अंत तक निश्चयवृत्तिसे ही लाभ होता है। इस लिये इस प्रकार निश्चयवृत्तिको बढ़ानेका यत्न करना योग्य है।

(९) **ज्ञानेंद्रिय योग**—मनुष्यके पास पांच ज्ञानेंद्रिय हैं। (१) नेत्र, (२) कर्ण, (३) नासिका, (४) जिह्वा और (५) त्वचा। क्रमशः अग्नि, आकाश, पृथिवी, जल और वायुके साथ इनका संबंध है। यद्यपि पृथिवी आदि क्रमसे इनका उल्लेख करना योग्य है तथापि योगशास्त्रके उपयोगकी दृष्टिसे यहां क्रम लिखा है। योगसाधन करनेकी दृष्टिसे नेत्र इंद्रियका इस मार्गमें मुख्य उपयोग है। अन्य इंद्रियोंका उपयोग किया जा सकता है, परंतु जो बात चक्षुसे साध्य होती है, वह बात उतनी सुलभतासे अन्य इंद्रियों द्वारा साध्य नहीं हो सकती। इसलिये तेज तत्व और उसका नेत्र इंद्रिय मुख्य है। मनकी एकाग्रता करनेके लिये नेत्र द्वारा अपनी दृष्टि किसी स्थानपर स्थिर रखनी होती है। वेधक रीतिसे इस प्रकार दृष्टिकी स्थिरता होने लगी तो मनकी शक्ति बड़ी बढ़ जाती है और इस प्रयोगसे दूसरोंके मनोंका वशीकरण भी साध्य होता है। इसी प्रकार दूसरे ज्ञानेंद्रियोंके उपयोगसे भी मनकी एकाग्रता साध्य की जा सकती है। परंतु यह कार्य केवल नेत्रेंद्रियसे करना विशेष हेतुके लिये अच्छा है। अपने पांचों ज्ञानेंद्रियोंको कल्याणके मार्गसे चलाना अत्यंत आवश्यक है। आंखोंसे परिणाममें कल्याणकारक पदार्थको ही देखिए,

कानोंसे परिणाममें कल्याणकारक शब्दोंको ही सुनिये, और इसी प्रकार अन्य ज्ञानेंद्रियों द्वारा वैसी ही बातें कीजिए कि जो परिणाममें सच्चा कल्याण करनेवाली हो सकतीं हैं । इसका अभ्यास आपको बड़ी ही सावधानीके साथ करना अत्यंत आवश्यक है। सब इंद्रियोंको अपने आधीन रखिए और किसीके आधीन आप न रहिए।

(१०) **कर्मेंद्रिय योग**—मनुष्यके पास पांच कर्मेंद्रिय हैं। (१) वाक् (२) हाथ, (३) पांव, (४) गुदा, (५) और शिस्न । इनमें वागिंद्रियका सबसे अधिक उपयोग इस मार्गमें है। वागिंद्रिय भी आग्नेय इंद्रिय हैं । मनुष्य प्राणी शब्द बोल रहे हैं परंतु बहुत ही थोड़े मनुष्य है, कि जो अपने शब्दोंको विचारपूर्वक प्रयुक्त करते हैं। शब्द एक महती शक्ति है इस लिये इसका सावधानीसे उपयोग करना चाहिए, अन्यथा बोलनेवाले और सुननेवालेका निःसंशय नाश होगा । योगसाधन करनेवालोंको उचित है कि वे बोलने और लिखनेके समय वैसे ही शब्द उपयोगमें लावें कि जिनका परिणाम अंतमें हितकारक ही होवे। तथा हाथ पांव आदि सब इंद्रियों द्वारा योग्य ही कार्य किया करें। कोई कर्मका इंद्रिय ऐसे बुरे कार्यमें प्रवृत्त न कीजिए कि जिससे अपना और अन्योंका नाश हो सके।

अपनी आयु एक यज्ञ है ऐसा समझिए । और इस यज्ञमें अपनी किसी शक्ति द्वारा कोई विघ्न न होवे, इसलिये आपसे जितना प्रयत्न हो सकता है उतना प्रयत्न कीजिए।

आपके अंदर जितनी शक्तियां हैं उनका सारांश रूपसे वर्णन ऊपर किया ही है। इनसे भिन्न भी अनेक शक्तियां आपके अंदर विद्यमान हैं, परंतु प्रस्तुत विषयके साथ उनका विशेष संबंध नहीं है। इसलिये उनका उल्लेख यहां नहीं किया। अपनी क्रियाके साथ जिनका साक्षात् संबंध है उनका ही वर्णन विशेषतया ऊपर किया है।

इस लेखको पढनेसे अपने साधनमार्गके साथ पाठकोंका परिचय हो जायगा। और उक्त बातोंका विचार करनेसे योगमार्गका निश्चय भी पाठक कर सकेंगे। तथापि उनमेंसे एक एक बातका क्रमशः विचार इस लेखमालामें आगे होता रहेगा।

योगसाधनसे अपनी ही शक्तियोंका विकास होता है। इस लिये क्रियात्मक जीवनकी इसमें मुख्यता है। जो पुरुषार्थ करेगा उसको ही सिद्धि होगी अन्यको नहीं। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इन बातोंको अपने जीवनमें क्रियारूपमें परिणत करनेका यत्न करें।

प्रसन्नता का साधन ।

(७)

यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि आठ प्रकारका योग-साधन है । योगसाधनका फल स्थूल और सूक्ष्म संपूर्ण शक्तियोंका विकास है । हरएक मनुष्यके पास स्थूल शरीर, सूक्ष्म इंद्रियां, मन, चित्त, बुद्धि आदि पदार्थ हैं । इस हरएक पदार्थमें अनेक भेद हैं । इन सब शक्तियोंका विकास करके उनको अपने आधीन रखना अत्यंत आवश्यक है । उदाहरणके लिये देखिए, कि स्थूल शक्तिका अत्यंत विकास पहिलवानोंके शरीरमें होता है । यदि इस शक्तिके साथ उसका मन उत्तम संस्कारोंसे संपन्न हुआ, सब अन्य इंद्रियांभी उत्तम बलवान होकर उसके आधीन होगई और तत्पश्चात् इन सब शक्तियोंका उपयोग उसके अपने अभ्युदयके लिये तथा जनताकी उन्नतिमें होने लगा, तब ही समझना चाहिए कि उसके कर्मयोगकी उत्तम सिद्धि होगई । नहीं तो बढी हुई शारीरिक अथवा मानसिक शक्ति उसकी हानि करनेके कार्यमें भी प्रयुक्त हो सकती है ।

कई लोग योगसाधन करते करते ऐसे पतित होते हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं होता । इस भ्रष्टताका कारण वह ही है कि जो ऊपर दिया है ! जो लोग स्थूल और सूक्ष्म शक्तियोंका

समविकास करनेकी दृष्टिसे योगसाधन नहीं करते, और प्राप्त शक्तियोंका अभ्युदय और निःश्रेयसके मार्गमेंही उपयोग करनेका विचार नहीं करते, उनको भ्रष्ट होनेमें देरी नहीं लगती।

साधक और उपासकको इस बातका प्रारंभसे ही विशेष ख्याल रखना चाहिए। अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंका ज्ञान और उसके विकासका साधन करनेका प्रकार प्रथम जानना चाहिए। अच्छे ग्रंथ पढ़नेके अभ्याससे उक्त अधिकार प्राप्त हो सकता है। साथ साथ अपने शरीरका विज्ञान भी चाहिए। किस अंगके विकासके लिये किस प्रकार अभ्यास करना चाहिए, यह बात ग्रंथोंमें लिखी नहीं होती। योगविषयक ग्रंथ सामान्य तत्वोंका उपदेश करते हैं। शेष विचार जो अभ्यास करनेवाला होगा उसको ही करना चाहिए।

यद्यपि इस लेखमालामें एक एक बातका विशेष विचार करनेका यत्न किया जायगा, तथापि योगसाधन करनेवालोंकी प्रकृतियां इतनी भिन्न होती हैं कि सबके लिये यथायोग्य बात कहना अत्यंत कठिन होता है। इसलिये जो पाठक योगाभ्यास करना चाहते हैं उनको स्वकीय शरीरका विज्ञान प्रथम प्राप्त करना चाहिए। जो जिसके पास साधन होंगे उपयोग करके अपने शरीरके आंतरिक अंगों और अवयवोंका ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न यदि पाठक करेंगे, तो उनका अधिक लाभ हो सकता है। इस लेखमालामें यद्यपि आवश्यक वर्णन दिया जायगा। तथापि इसका जितना अधिक ज्ञान प्राप्त होगा उतना अधिक लाभ है। इसलिये यहां सूचना दी है।

इस लेखमें पूर्व तैयारीके विषयमें एक मुख्य बात सबसे प्रथम कहनी है, जिसके विना संपूर्ण योगसाधन निष्फल हो सकता है और जिसके होनेसे थोडासा योगसाधन भी अधिक लाभदायक हो सकता है। वह मुख्य बात " चित्तकी प्रसन्नता " ही है। हरएक अवस्थामें अपने चित्तको प्रसन्न रखनेका अभ्यास कीजिए। आपकी इच्छाके विपरीत भी कोई बात बन गई तो उस समयमें भी आनंदित रहनेका अभ्यास करना चाहिए। शरीरको कष्ट होते हों, किसी प्रकारकी अन्य आपत्तियां आजावें, कोई अन्य बात अनिष्ट रीतिसे बन गई हो, तो भी आप अपनी चित्तवृत्ति प्रसन्न रखिए। प्रथमतः यह बात आपको हलकी प्रतीत होगी अथवा कदाचित् अशक्य भी प्रतीत हो सकती है। यदि आप निश्चय करेंगे तो आपको स्वयं इस बातका अनुभव हो जायगा कि उक्त बात न तो अशक्य है और न हलकी है। इस वृत्तिके साथ जो योगसाधन आप करेंगे वह दस गुणा फल आपको दे सकता है।

चेहरेपर हास्यवृत्ति रखनेका अभ्यास करना चाहिए। जो मनकी वृत्ति होती है वह स्वयं चेहरेपर दिखाई देती है। इसलिये अपना चेहरा कैसा रहना है इस बातका भी आपको ख्याल करना चाहिए। इस दृष्टिसे आप अपना चेहरा दर्पणमें देखते जाइए और उसको अधिक स्मितयुक्त बनाइए। दुर्मुखता उसपर न रखिए। दो तीन मास आप अभ्यास करते रहेंगे तो आपके चेहरेपर उक्त स्मित वृत्ति रह सकती है। कई लोग कहेंगे कि अपना चेहरा दर्पणमें देखना पाप है। परंतु उनको ध्यानमें

रखना चाहिए कि इसमें कोई पाप नहीं है। पाप तब हो सकता है कि जब उसका उपयोग काम आदि दुष्ट विकारोंके पास झुकनेवाले कार्योंमें किया जावे। इसी प्रकार कई लोग कहते हैं कि उत्तम वस्त्रालंकार धारण करना भी बुरा है। परंतु वेदके कथनानुसार सुंदर वस्त्र और उत्तम अलंकार धारण करना कोई बुरा नहीं है। **सदुपयोगसे भलाई और दुरुपयोगसे बुराई होती है।** तात्पर्य अपने आपको हीन, दीन, दुर्बल, मलीन, दुर्मुख कदापि रखना नहीं चाहिए; परंतु उदात्त, प्रौढ़, बलिष्ठ, स्वच्छ और प्रसन्नवदन करनेका यत्न करना चाहिए। **बाह्य अवस्थाका परिणाम अपने अंदरकी घटनाओंपर होता है और अपने आंतरिक भावोंके अनुसार अपनी बाह्य परिस्थिति बदलती जाती है।** इसलिये आपको इस बातके विषयमें सदा सावधान रहना चाहिए और अपनी बाह्य प्रसन्नता तथा आंतरिक प्रसन्नता स्थिर करनेका अवश्य यत्न करना चाहिए। यदि इस बातका विचार प्रारंभमें ही आप न करेंगे तो आपसे योगसाधन यथायोग्य रीतिसे नहीं हो सकता।

आपको इस प्रारंभिक अवस्थामें किसी बालककी वृत्तिका सूक्ष्म रीतिसे अभ्यास करनेका यत्न करना चाहिए। बालक अपना हो अथवा दूसरेका हो। अपना बालक नीरोग और हास्यमुख होगा तो बड़ा ही अच्छा होगा। न होगा तो किसी अन्य नीरोग बालककी वृत्तिका अभ्यास कीजिए। इस अभ्याससे आपको बड़ा ही लाभ हो सकता है। जन्मसिद्ध निज आनंद बालकके निष्कपट प्रसन्न

मुखपर ही आप देख सकेंगे । बड़े लोगोंके अंतःकरण दिखावटी और ढोंगी व्यवहारके कारण बिगडे होते हैं । बालकोंकी वृत्तिमें जो निष्कपट प्रेमकी प्रसन्नता है वह आपको किसी अन्य स्थानपर नहीं दिखाई देगी । छोटे छोटे बालक किस प्रकार शीघ्र अपने दुःखको भूलते हैं, दुःख देनेवालेके साथ भी किस प्रकार क्षणार्धमें हंसने लगते हैं, जो कार्य करते हैं उसमें उनकी वृत्ति कितनी तल्लीन होती है, इत्यादि बातें आप उनके मुखपर देख सकते हैं । यदि आप शुद्ध भावसे नीरोग बालककी वृत्तिका अच्छी प्रकार अभ्यास करेंगे तो थोडेही दिनोंमें आपको अनुभव होगा कि जो बातें छोटेसे छोटे बालकमें स्वयं सिद्ध हैं, उन बातोंकी ही न्यूनता आपमें है । फिर आप कहिए कि जो ज्ञान साधन और पुरुषार्थ आपने इतनी उमर तक किया है उससे आपकी किस दृष्टिसे उन्नति होगई है और किस बातमें अधोगति हो गई है । बहुत ही ऐसी बातें हैं कि जो बालकोंकी वृत्ति देखकर बडोंको भी सीखनी चाहिये । यदि यह अभ्यास आप सूक्ष्म दृष्टिसे करते जांयगे तो योगसाधन करना आपको सुगम हो सकता है । आशा है कि आप अनुभव लेंगे ।

पूर्व लेखमें लिखा है, कि योगसाधन करनेवालोंको बालकके हृदयका अभ्यास करना चाहिए । इस बातका स्वरूप थोडेसे विस्तारसे इस लेखमें बताना है, क्यों कि योगसाधनकी दृष्टिसे इस अभ्यासका अत्यंत महत्व है । जो बालक निरोगी और हृष्टपुष्ट तथा प्रसन्न वदन होता है उसको ही इस कार्यके लिये लेना उचित है । जो सदा आनंदसे खेलता रहता है उसके हृदयका ही निरीक्षण करना चाहिए । तथा जिसके मनमें सारासार विचार करनेकी शक्ति बहुत बढी नहीं है, और जो छल, कपट, हट आदिमें प्रवृत्त नहीं होता, अर्थात् जो शुद्ध बाल्य स्वभावसे ही युक्त है उसको अपने सन्मुख रखिए । बहुधा चार पांच वर्षसे छोटी उमरका प्रत्येक नीरोग और हृष्टपुष्ट बालक आपकी सहायता कर सकता है । इससे बडी उमरके लडकोंमें हमारे कुसंस्कारोंसे बुरे भाव आना प्रारंभ होता है, इस लिये उन बडे लडकोंका आपको वैसा उपयोग नहीं होगा ।

यदि आप सर्वसाधारण बालकोंका निरीक्षण करेंगे, तो आपको पता लग जायगा, कि बडोंके कुसंस्कारोंसे बालकोंके कोमल और निष्कलंक हृदयोंमें बुरे भाव उत्पन्न होते हैं । छोटे छोटे बालक भी

बड़े चातुर्यसे हमारे सब व्यवहारोंका निरीक्षण करते रहते हैं, और छल, कपट, हट आदि दुष्टभाव हमारेसे ही सीखते हैं। इसका अनुभव आप सबसे प्रथम कीजिए कि छोटी उमरमें बालकोंके अंतःकरण कितने निर्मल होते हैं। जिसप्रकार सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें जीवात्माकी ब्रह्मरूपता होती है, उसी प्रकार बालककी बिलकुल अज्ञान अवस्थामें भी ब्रह्मरूपता होती है। प्रायः वर्ष दो वर्षकी उमर तक यह शुद्ध अवस्था रहती है। ब्रह्मरूप आत्मस्थितिका दर्शन करनेकी यदि आपकी सदिच्छा है, तो आप इस अवस्थामें बालकका मुख देखिए। वहां शुद्ध आनंदही आनंद आपको दिखाई देगा। भूख और प्यासका शमन होनेके पश्चात् नीरोग बालकको आप देखिए, वहां निर्विषय आनंदकी प्रत्यक्षता आप कर सकते हैं। हम सब विषयोंका सुख जानते ही हैं, परंतु इस बालकके मुखपर जो दिखाई दे रहा है, वह शब्द स्पर्शादि विषयोंसे प्राप्त होनेवाला सुख नहीं है। वह बालकका आत्मा अभौतिक ब्रह्मरूपताके आनंदका अनुभव कर रहा है। उसके चेहरेपर जो हास्य है वह हमारे हास्यके समान बनावटी नहीं है। दूसरोंकी खुशामद करनेका आत्मघातकी भाव नहीं है। बड़ोंके सामने हाथ जोड कर रहना, और अंदर उनका ही द्वेष करनेकी बनावटी दिलकी अवस्था वहां नहीं है। असत्यकी ओर झुकनेकी वहां प्रवृत्ति नहीं है। दूसरेका घातपात करनेके भावका पता भी उसको नहीं है, वह बालक दूसरेका घात करके अपना लाभ करना जानता ही नहीं है, इतनाही नहीं परंतु वह दूसरेका नाश देखना भी नहीं चाहता।

चोरी करनेकी इच्छा वहां नहीं होती, चोरी करके छिप जानेका भाव वहां नहीं है। ब्रह्मचर्य और वीर्य रक्षण तो उसको जन्मसे ही सिद्ध है। वहां लालच इतनी कम होती है कि उसकी प्रवृत्ति दान लेनेकी ओर होती भी नहीं। जो पदार्थ आप देंगे उसका वह स्वीकार करेगा, परंतु अपने लिये स्थिर रूपसे रखनेकी कल्पना ही वहां नहीं है। इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांच यम वहां स्वयं सिद्ध हैं। तीन वर्षके बालकमें इतना आप अनुभव लीजिए, तो आपको आश्चर्य प्रतीत होगा कि यह अप्रबुद्ध अवस्था कितनी शुद्ध और निष्कलंक अवस्था है।

कदाचित् आप कहेंगे कि बालक मलिन रहते हैं, इसलिये उनके पास शुद्धता नहीं होगी। परंतु यह आपका ख्याल ही गलत है। यद्यपि उनका शरीर मलिन रहता है, उनके चेहरेपर मलके आवरण होते हैं, तथापि वह जानता ही नहीं है कि मलिनता क्या है और निर्मलता क्या है। उसका पवित्र अंतःकरण मलिनतासे भी ऊपर है और निर्मलतासे भी परे है। इसी लिये उसका मुख मलिन होनेपर भी उसकी पर्वाह उसको नहीं होती और वह अपने निज आनंदसे ही हंसता रहता है। जब कभी उसको मलिनताकी कल्पना होती है तब ही उसके दुःखका प्रारंभ होता है। इस छोटी आयुमें संतोष और प्रसन्नचित्तका साम्राज्य रहता है। यदि बाहिरके किसी कारणसे असंतुष्टि आ भी गई तो क्षणमात्रमें पुनः निजरूपमें उसकी स्थिति हो जाती है। तप और स्वाध्याय ये साधन हमारे लिये ही हैं। बालकको ब्रह्म-

रूपता सहज प्राप्त है इसलिये इन साधनोंकी उसको आवश्यकता ही नहीं। इस प्रकार नियमोंकी उपस्थिति वहां है।

यमनियमोंका इस प्रकार आप वहां अनुभव कीजिए। तत्पश्चात् आसन आते हैं। बड़े मनुष्योंको दुराचारके कारण शरीर मलिन होते हैं, अंदर नस नाड़ियोंमें मलिनता भरी रहती है, इस कारण आसन करनेकी बड़े मनुष्योंको आवश्यकता है। छोटे बालकका शरीर निर्मल होनेके कारण उसको आसन करनेकी इस अवस्थामें आवश्यकता ही नहीं रहती। वह अतिभोजन करता नहीं, सभ्यताके सबबसे हमारे समान मलमूत्रके वेगोंको दबाता नहीं, माताने दूध अधिक पिलाया तो पेटसे अधिक दूध वमन द्वारा निकालनेकी शक्ति स्वयं रखता है। इस कारण नसनाडियोंमें मल संचय नहीं होता। इसलिये आसनोंकी आवश्यकता उसको नहीं है।

प्राणायामकी विद्या उसको जन्मसे ही सिद्ध होती है। पश्चात् ही तंग कपड़े, तंग मकान आदि हमारे कुसंस्कारोंके कारण उसकी वह सिद्धि भूल जाती है। परंतु आप छः मासका लड़का देखिए कैसा दीर्घ और पूर्ण श्वास लेता रहता है। उसके समान पूर्ण श्वास बडा आदमी नहीं ले सकता। क्योंकि हमारी सभ्यताके कारण अनेक प्रतिबंध खडे हो गये हैं, जो हमारे प्राणके व्यवहारमें बाधा डाल रहे हैं। हमारे कपडे लत्ते हमारा रहन सहन, हमारा नियम विरुद्ध आचरण, इत्यादि कारणोंसे हमारा श्वास वैसा पूर्ण नहीं होता कि जैसा होना चाहिए। परंतु बालकमें

उक्त अनियम नहीं होते, इस लिये वह पूर्ण श्वास लेता है। यह ही एक हेतु है कि उसका मन स्थिर रहता है, क्योंकि प्राणकी चंचलताके कारण ही चित्तकी चंचलता होती है । प्राणायामादि बडे बडे अभ्यासके पश्चात् जो बात हमको साध्य होती है वह जन्मसे बालकको साध्य रहती है ।

बालकके इंद्रिय स्वैर नहीं होते, विषयोंकी लालसा और वासना उनमें नहीं होती, इस कारण प्रत्याहारकी उसके लिये आवश्यकता ही नहीं है। जिस पदार्थकी तर्फ बालक देखता है, उसमें उसका मन ऐसा जम जाता है, कि उस पदार्थसे भिन्न किसी अन्य पदार्थका कोई विचार उसके मनमें आता ही नहीं । इस प्रकार धारणा और ध्यानकी सिद्धि उसको जन्मसे होती है। यदि ब्रह्मरूपावस्था ही समाधि है तो वह भी उसको सिद्ध ही है। इस प्रकार ब्रह्मरूपावस्थाके लिये अत्यंत आवश्यक योगका साधन दो तीन वर्ष तक छोटे बालकको स्वयं सिद्ध रहता है । इसी लिये इस आयुके छोटे बालक सदा ही अद्भुत आनंदमें मग्न रहते हैं। यदि हमारा सब समाज योगियोंका समाज हो जायगा तो, यह बालककी जन्मसिद्ध निजावस्था उससे हटेगी ही नहीं, परंतु बालकमें जो ज्ञानकी न्यूनता रहती है उतनी दूर होकर वह ही उत्तम योगी बन सकता है, परंतु क्या किया जावे? हमारी जनता ऐसी अवस्थामें पहुंची है, कि शुद्ध हृदय बालकको भी हम ऐसा गिरा सकते हैं कि आगे उसके मनमें आनेपर भी योगका साधन करना उसके लिये असंभव हो जाता है ।

कई पाठक यहां पूछेंगे कि बालककी अज्ञानावस्थाकी इतनी क्यों प्रशंसा की जाती है? उत्तरमें निवेदन है कि उसकी अज्ञानावस्थाकी उक्त प्रशंसा नहीं है, परंतु उसकी ब्रह्मरूपावस्थाकी ही प्रशंसा है। प्रत्येक प्राणिमात्रको सुषुप्तिमें ब्रह्मरूपावस्था प्राप्त होती है। सुषुप्तिकी ब्रह्मरूपावस्था तमोगुणि होती है क्योंकि उस अवस्थामें अज्ञान रहता है। उसी प्रकार ज्ञान रहित ब्रह्म रूपावस्था इस छोटी उमरमें होती है। यदि यही हृदयकी अवस्था रखकर उचित ज्ञान दिया जायगा तो उसको जीवन्मुक्तकी ही अवस्था प्राप्त होगी। समाजकी अवस्थापर यह बात निर्भर है। वैदिक कालमें सनत्कुमार आदिकोंको इस प्रकार बालपनसे ही जीवन्मुक्तावस्था प्राप्त हो गई थी। परंतु उस प्रकारकी श्रेष्ठ जनता अब कहां है? उस समय राज्यमें चोर, व्यभिचारी, ठग आदि दुष्ट न थे; परंतु आज कल प्रायः हीन प्रवृत्तिके ही लोग हो गये हैं।

इस प्रकार आप अपने बालककी योग्यता श्रेष्ठ समझ लीजिए। वह अज्ञान है अथवा निर्बल है इसलिये उसकी उपेक्षा न कीजिए। यदि आप अन्नपोषणादि द्वारा उसकी सहायता कर सकते हैं, तो वह बालक अपनी निज अवस्थासे श्रेष्ठ बातें प्राप्त करनेके साधन आपको बता सकता है। उसका व्यवहार देखनेकी दिव्य दृष्टि आपमें होगी, तो ही आपको लाभ हो सकता है। अन्यथा हरएक मातापिता अपने बालबच्चोंका पालन पोषण कर ही रहे हैं, परंतु वहांका चमत्कार देखनेके आंख किसको हैं और

कौन उसका निरीक्षण कर रहे हैं ! सबको ही अपनी प्रौढताकी घमंड है ! ! परंतु बालकके समान सरल, उच्च और निर्मल हृदय किसके पास होता है ? सहस्रों प्रकारके साधन करने पर भी जो निर्मलता हृदयमें प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य है वह निर्मलता बालकके ही अंतःकरणमें आप देख सकते हैं। बालक टेढेपनको जानता ही नहीं, जबतक आप उनको टेढा पन नहीं सिखायेंगे। उसके सब व्यवहार कैसे सरल, निरुपद्रवी और निष्कपट प्रेमसे युक्त होते हैं और आपके व्यवहार कैसे कपटी, घातकी और जालोंसे भरे रहते हैं। देखिये तो सही, कि जिस चातुर्यके विषयमें किसी मनुष्यकी आप तारीफ करते हैं, उसमें इतनी सरलता कहां होती है ? जो बातें आपने अपने अंदर बढाई हैं, उनके कारण ही आप समाधि नहीं लगा सकते, उनके कारण ही आपमें डर बढ रहा है और सब अशांति फैल रही है।

छोटे लडकोंको आप सरलता नहीं सिखा सकते, क्योंकि वह आपके पास ही नहीं है। चित्तकी एकाग्रता करना आप उनको नहीं सिखा सकते क्योंकि उनसे आपका ही चित्त अधिक चंचल है। खेलने आदिके समय जो कार्य बालक करते रहते हैं, उस समय उनका मन जैसा पूर्ण एकाग्र होता है, और उस कार्यके सिवाय उनको किसी दूसरे बातका बिलकुल ध्यान तक नहीं होता। यदि ऐसा आपका चित्त आपके कार्यमें एकाग्र होता रहेगा, तो आप बीस गुणा अधिक उत्तम कार्य कर सकेंगे। अब विचार कीजिए कि इस दृष्टिसे कौनसी अवस्था श्रेष्ठ है और हम जो

अपनी उन्नति मान रहे हैं, उसमें हमारी मानसिक गिरावट कितनी हो गई है ?

छोटे बालकको जब कोई अपूर्व पदार्थ प्राप्त होता है, तब उसको कितना आनंद होता है, प्रत्येक पदार्थमें अपूर्वताका अनुभव करनेका जो गुण बालकोंमें होता है वह बडोंमें नहीं होता। जिन पुरुषोंमें यह अपूर्वताका अनुभव करनेका गुण होता है वे ही कवि और सत्पुरुष हुआ करते हैं; परंतु प्रायः प्रत्येक बालकमें यह गुण होता है. पश्चात् कुसंस्कारोंके कारण यह गुण नष्ट होता है। इस गुणको अपने अंदर बढानेकी अत्यंत आवश्यकता है क्यों कि आपकोभी यदि ब्रह्मरूपावस्था प्राप्त करना है, तो प्रत्येक पदार्थमें अपूर्व ब्रह्मको ही देखनेका अभ्यास करना चाहिए। बालकका हृदय ब्रह्मरूप होनेसे ही हरएक पदार्थमें उसको अपूर्वताका आनंद प्राप्त होता है। छोटा बालक न समझते हुए जो श्रेष्ठ व्यवहार करता है वैसा आपको ज्ञानपूर्वक करना चाहिए।

भूलजानेका अभ्यास भी बालकोंमें बडा होता है। किसी समय बालक किसी कारण विशेषसे रोता होगा, तो आप झट किसी नवीन चमकीले पदार्थपर उसका चित्त आकर्षित कीजिए। तो एक क्षणमें रोना छोडकर हंसने लगेगा। इतने थोडे समयमें उसको रोनेका विस्मरण होगा कि आपको भी आश्चर्य होगा। यह बात बड़ी महत्वकी है। इसका आपको अधिक विचार करना चाहिए। उसका मन निर्लेप रहता है, इसलिये ही बालक ऐसा कर सकता है। वह किसीमें लिप्त नहीं होता, यद्यपि जिस पर मन रखेगा

उसमें उस समय तल्लीन होगा, तथापि कमलपत्रके समान पानीमें डूबता हुआ भी उसका मन गीला नहीं हो सकता। देखता हुआ भी न देखनेकी सिद्धि उसको होती है। कार्य करने पर भी न करनेकी सिद्धि उसको होती है। भगवान् श्रीकृष्णनें गीतामें यही बात कही है। संग अथवा आसक्ति छोडकर सब कार्य करना चाहिए। वह बात बालकोंमें ही आपको दिखाई देगी। बालक सब कार्य एकाग्र मनसे करते हैं, परंतु किसीमें उनकी आसक्ति नहीं होती। देखिए कितनी मनकी शुद्धावस्था है। समाज ही सबका सब ऐसा शुद्ध बनना चाहिए कि जो बालकोंको न बिगाड सके। परंतु यह कैसे हो सकता है? मनुष्य अच्छेको बुरा और बुरेको अच्छा कह रहे हैं और गिरावटमें समाधान मान रहे हैं। प्रतिदिन समता भाव जाता है और विषम भाव मनमें आ रहे हैं, तथापि बहुत ही थोडे सज्जन ऐसे हैं कि जो इसका विचार कर सकते हैं।

कृत्रिम भेदको बालक जानता ही नहीं। देखिए इस छोटी उमरमें कितनी सम दृष्टि होती है। ब्राह्मण क्षत्रियोंके लडकोंका निःसीम प्रेम चांडालके लडकोंके साथ भी हो सकता है। ब्रह्मरूपावस्थामें चांडालत्व और ब्राह्मणत्व दोनों नहीं रहते। ये हमारे कृत्रिम अर्थात् बनावटी भेद हैं कि जो हमारे लिये प्रतिबंधक होते हैं, तथापि हम इनको छोड नहीं सकते। शुद्ध अंतःकरणकी समता होनेके कारण बालक इन भेदोंको जानते ही नहीं, और यदि आप उनको न सिखायेंगे तो उनके अंतःकरणकी समता कभी नष्ट नहीं हो सकती, इसी प्रकार बडा छोटा, ओहदेदार और अनधिकारी,

श्रीमान और दरिद्री आदि बनावटी भेदोंको भी बालक नहीं जानते, क्या आपने कभी ऐसे समतासे परिपूर्ण अंतःकरणोंके शुभ और सरल भावोंका विचार किया है? आप कहते हैं कि बालक अज्ञानी हैं और हम ज्ञानी हैं। विचार तो कीजिए कि वास्तविक कौन कैसे हैं। यदि सच्चा विचार करेंगे तो कदाचित् उलटी ही बात सिद्ध होगी।

बाबा आदम और हव्वा (ईश और ईशा) ज्ञान वृक्षका फल खानेके पश्चात् ही स्वर्ग धामसे गिर गये। आप सोचिए तो सही कि बालकोंकी ब्रह्मरूपावस्था भी तब ही हटती है कि जब उनको हमारे जैसा ज्ञान प्राप्त होने लगता है। बाबा आदमके समान बालक नंगे रहते हैं; परंतु वे स्वर्गमें रहनेके कारण नंगेपनसेही अनभिज्ञ होते हैं। बालक और बालिकाएं नंगी एक स्थानपर रहेंगी, परंतु स्वर्गका सुख उनको होगा, मृत्यु लोकका विचार उनमें नहीं होता। जगत्का संपूर्ण उद्यान उनके लिये स्वर्गही है, सचमुच वे बालक मृत्युलोकमें नहीं रहते, वे ब्रह्मलोकका आनंद लेते हुए सच मुच ब्रह्मलोकमेंही रहते हैं, परंतु जब उनको हमारा ज्ञान प्राप्त होने लगता है तब शनैः शनैः उनको खुदा बहिश्तसे नीचे गिरा देता है, तबसे ही उनको अपने नंगेपनकी लज्जा होने लगती है, और सब प्रकारके दुःख उनके पीछे लगते हैं।

इसाई लोगोंको भी अपने ही बाइबलकी कथाका तत्व ज्ञात नहीं है। वे शब्दार्थको जानते हुए गर्भितार्थसे बिचारे वंचित ही हैं।

पाठको ! बाइबल और कुरान शरीफके बाबा आदम, वे शुद्ध हृदय स्वर्गधामके आत्मा, आपके पास हैं; परंतु आपको पता नहीं है। वे आपके ही घरोंमें रहते हुए ब्रह्म लोकका आनंद ले रहे हैं कि जिस समय आप संसारका दुःख अनुभव करते रहते हैं। जिस संसारको आपने कष्ट रूप अनुभव किया है, उसीमें बहिश्त (स्वर्ग) का आनंद जो अनुभव कर रहे हैं, क्या उनकी योग्यता आपसे कम है ? यदि बालकोंकी वास्तविक अवस्थाका आपको पता लगेगा तो आप ही उनसे बडा उपयोगी बोध ले सकते हैं।

ज्ञान वृक्षका फल खानेसे बाबा आदम क्यों गिर गया, इसका अब आपको ज्ञान हुआ ही होगा। जिस ज्ञानकी घमंड आप रखते हैं, वह ज्ञान ही आपकी गिरावटका कारण है, परंतु आपको जान-नेकी भी इच्छा नहीं है। विषमय सांपके उपदेशसे यह ज्ञान मिलता है। इसमें क्या संदेह है ? जिस व्यवहारमें छली, कपटी, ढोंगी और धूर्त ही सबसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं क्या वह सांपोंका ही क्षेत्र नहीं है ? ये सांप शुद्ध हृदयवाले बालकोंको अपनी हीनतासे कैसे गिरा रहे हैं, देखिए और उक्त सब कथाका अनुभव कीजिए। आपको ही पता लग जायगा कि न केवल जगत्के प्रारंभमें ही वह घटना हुई थी, परंतु उस कालसे इस समय तक वह ही घटना हो रही है और भविष्यत्में भी होती रहेगी।

यहां हमको बाइबलकी कथाका स्पष्टीकरण करना नहीं है परंतु बालकोंका निरीक्षण करनेकी दृष्टिका ही थोडासा विचार करना है। बालकोंका परीक्षण यह विषय बडा ही विस्तृत है। और इसका

आप जितना अधिक विचार करेंगे उतना आपको अधिक आश्चर्य-कारक ज्ञान प्राप्त हो जायगा। इस लेखमें थोडीसी दिशा बताई गई है। आशा है कि इस रीतिसे विचार करके पाठक अपने लिये जो योग्य उपदेश योगसाधनकी दृष्टिसे लेना है उतना ही लेंगे।

कदाचित् कोई पाठक इस लेखके विषयमें संशय भी करेंगे, उनके लिये यहां इतना ही निवेदन है कि शंका अथवा संशय करनेके पूर्व चार पांच महिने इस दृष्टिसे विचार कीजिए और पश्चात् इसका विरोध करना आवश्यक हुआ तो कीजिए।

अंतमें निवेदन है कि छोटे छोटे बालकोंकी ओर हीन दृष्टिसे देखना छोड दीजिए। वे स्वर्गधामके आत्मा हैं, ऐसा मान लीजिए और कमसे कम यदि आप उनको उच्च नहीं बना सकते तो न सही, उनको अपने कुसंस्कारोंसे न गिराइए। तथा जहां तक हो सके वहां तक सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करके उनके हृदयकी सरलता अपनेमें लानेका यत्न कीजिए। यदि इतनी बात आपने प्राप्त की तो आप इस लेखकी निंदा नहीं करेंगे।

प्राणायामसे लाभ।

(१)

प्राणायामका आरोग्यके साथ अत्यंत संबंध है । प्राणायाम क्रियामें प्राणोंका आयाम करना होता है। नियमन और विस्तारका नाम आयाम है। संपूर्ण प्राणशक्तिका नियमन करना, उस शक्तिको अपने स्वाधीन रखनेका यत्न करना, और उसका विस्तार करना प्राणायामका उद्देश है। अपनी छातीमें जो फेंफडे हैं उसमें मुख्य प्राणका स्थान है। वहां विश्वव्यापक प्राणशक्ति वायुके साथ नासिका-द्वारा जाती है, और रुधिरमें मिल जाती है और रुधिरके साथ सब शरीरमें पहुंचती है। वह प्राणही हमारी जीवन कला है। इसके विना हमारा जीवन सर्वथा अशक्य है।

फेंफडोंके अंदर प्राणका निवास होता है। जितना फेंफडोंका विस्तार होगा और जितना अवकाश फेंफडोंके अंदर प्राणके लिये प्राप्त हो सकेगा, उतना प्राण हमारे शरीरके अंदर प्रविष्ट हो सकेगा। अर्थात् जिसकी छाती संकुचित होगी, उसमें प्राण कम पहुंचेगा और जिसकी विस्तृत होगी, उसके शरीरमें प्राण अधिक पहुंचेगा । यही कारण है कि, संकुचित छातीवाले मनुष्यको ही क्षय आदिकी बीमारी होती है; वैसी विस्तृत छाती वालेको नहीं होती। तथा प्राणायामके

अभ्याससे जिसके फेंफडे बलवान होते हैं उसको तो किसी बीमारीका भयही नहीं होसकता। क्योंकि, जिसके शरीरमें विपुल प्राणशक्ति प्रतिदिन् पहुंचती रहती है, उसके पास रोग कैसा ठहर सकता है! प्राणही सब रोगोंका दूर करनेवाला है, तथा प्राणही पूर्ण आरोग्य देनेवाला देव है।

लुहारकी धौंकनी पाठकोंने देखी ही होगी। धौंकनीसे वायुका प्रवाह जब अग्नि पर पहुंचता है, तब अग्नि प्रदीप्त होता है। और उस प्रदीप्त अग्निमें लोहाभी पिघळ जाता है। इस प्रकार शारीरिक अग्नि प्रदीप्त करनेके लिये परमेश्वरने जो धौंकनी बनाई है, वहही हमारे फेंफडे हैं। इनके द्वारा प्राणमिश्रित वायुका प्रवाह जैसा जैसा शरीरके अग्निपर चलने लगता है, वैसा वैसा शरीरका अग्नि प्रदीप्त होने लगता है। शारीरिक अग्नि प्रदीप्त होनेसेही शरीरका तेज बढता है, और क्षुधा आदि प्रदीप्त होने लगती हैं। इस प्रकार प्राणायामका आरोग्यके साथ संबंध है।

अन्नके विना मनुष्य तीन मासतक जीवित रह सकता है, जलके विना अधिकसे अधिक दस वीस दिन रह सकेगा, परंतु शुद्ध वायुके विना थोडेसे क्षण भी रहना प्राणियोंके लिये अशक्य है। इतना वायुके साथ हमारे जीवनका संबंध है। दूसरी बात यह है, कि प्रतिदिनका मनुष्यका अधिकसे अधिक भोजन सेर या दो सेर अन्नसे हो सकता है, अधिकसे अधिक दो चार सेर जल प्रतिदिन मनुष्यके लिये आवश्यक हो सकता है, परंतु कई मण हवा प्रतिदिन प्रतिमनुष्य अपने अंदर ले रहा है। अर्थात् जहां स्थूल अन्न मनुष्यके लिये प्रतिदिन सेर दो सेरही पर्याप्त होता है, वहां

सूक्ष्म शुद्ध प्राणवायु मनुष्यके लिये प्रतिदिन बीस तीस मणोंसेभी अधिक आवश्यक होता है। इससे पाठक जान सकते हैं, कि वायुका महत्त्व कितना है, और हमारे जीवनकेसाथ उसका कितना घनिष्ट संबंध है।

खाने पीनेके पदार्थ बचानेके लिये जितनी हम सब खबरदारी करते हैं उतनी शुद्ध हवाके लिये नहीं करते। यही मुख्य कारण है कि जिससे विविध बीमारियां बढ रहीं हैं और आरोग्य नष्ट होने के कारण आयु क्षीण हो रही है। इसलिये सबको अत्यंत आवश्यक है कि, वे अपने खानपानके पदार्थोंका जितना विचार कर रहे हैं उससे शुद्ध वायु सेवनका अधिक विचार करें, और प्राणायामद्वारा अपने प्राणस्थानकी पवित्रता बढावें, ऐसा करनेसे दीर्घ आयु और आरोग्य निःसंदेह प्राप्त हो सकता है।

प्राण के दो कार्य हैं। एक फेंफडों द्वारा सब शरीरमें प्रविष्ट हो कर वहां नवजीवन का संचार करना है। शरीरके अंदर जो जीवन की ज्योति प्रदीप्त रहती है, केवल इसीके कारण ही है। इसका दूसरा कार्य रुधिरकी शुद्धि करना है। जो रक्त सब शरीरमें भ्रमण करता हुआ, और स्थान स्थानमें जीवन की कला बढाकर तथा वहांके मलोंको साथ लेकर वहांकी निर्मलता करता हुआ फिर हृदयमें आता है, वह बहुतही मलिन होता है। यह मलिन रक्त जब फेंफडोंमें प्रविष्ट होता है, तब उसके साथ शुद्ध वायुका संबंध होनेसे तत्काल पुनः शुद्ध और लाल रंगसे युक्त बनता है। जब यह रक्त शुद्ध होता है, तब यह फिर हृदयमें आकर सब

शरीरमें भेजने योग्य होजाता है। यह क्रम सब जीवन भर चलता रहता है। रुधिरकी शुद्धतापर ही आरोग्य की स्थिति निर्भर है। जिसका रुधिर अशुद्ध वह रोगी और जिसका रुधिर शुद्ध वह नीरोग होता है। अर्थात् प्राणवायुसे रुधिरकी शुद्धि, शुद्ध रक्तसे नीरोगता बल और दीर्घ आयुष्य, और नीरोगतासे प्रसन्नता प्राप्त होती है। प्राणायामसे ही यह सब सुसाध्य होता है, इसलिये प्राणायामका महत्व अधिक है।

वायु न पहुंचनेसे चूल्हेकी लकडियां जलतीं नहीं, और न जले हुए लकडियोंसे सर्वत्र धूआं हो जाता है और सबको कष्ट पहुंचता है इसीप्रकार प्राणवायुका संचार शरीरमें ठीक प्रकार न होनेसे जठरांग्नि मंद होता है, अन्न का पचन ठीक प्रकार नहीं होता, पेटमें वायु ठहर जाता है, पेट फूल जाता है और कष्ट होता है। यही सब रोगोंका मूल है। प्राणायाम के द्वारा जठराग्नि प्रदीप्त होता है इसलिये रोगका सब मूल कारणही हट जाता है और आरोग्य का पूर्ण आनंद प्राप्त होता है, यह लाभ प्राणायामसे होता है।

रक्तके आश्रयसे जीवन रहता है। जैसा उसका रक्त होगा वैसा ही मनुष्य होगा। इसलिये रक्त शुद्धिके लिये हरएक मनुष्यको प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। हुक्का तमाखू आदि धूम्र-पानके दुष्ट व्यसनोंसे कितने अनर्थ हो रहे हैं इसकी निश्चित कल्पना इस विचारसे हो सकती है। फेंफडोंमें जो रक्त आता है, उसमें शुद्ध हवा मिलनेसे आरोग्य बढ़ता है, परंतु उसमें और धूवां मिलानेसे कितनी खराबी होती है, इसका बहुतही थोडे

लोग विचार करते हैं इस धूम्रपानके दुष्ट व्यसनके कारण न केवल तमाखू सिगरेट आदि पीनेवालोंका नुकसान होता है, परंतु उनके संतानोंमें जन्मसे खूनकी बीमारी और हृदयकी कमजोरी इतनी होती है, कि वे झट् हरएक रोगके शिकार बन सकते हैं। यही आजकल अनर्थ हो रहा है। तमाखू पीनेवालोंके साथ जो बैठते हैं, उनके नाकमें भी वह धूवां चला जाता है, इस प्रकार न पीनेवालोंके आरोग्यकी भी हानि होती है। इन दुष्ट व्यसनोंमें जो पैसेका नुकसान है वह और ही है। इस प्रकार लोग अपने घातके मार्गमें अधिक प्रवृत्त हो रहे हैं, और अपनी सच्ची उन्नतिके मार्गमें जानेकी इच्छातक नहीं करते, क्या यह आश्चर्य नहीं है?

प्रत्येक श्वासके साथ जितनी अधिक शुद्ध हवा फेंफडोंमें प्रविष्ट होगी उतना अधिक आरोग्य प्राप्त हो सकता है। प्राणायामके अभ्याससे फेंफडोंका भी आकार बढता है, और उनकी प्राणधारणा शक्ति भी बढती है। इसलिये प्राणायामका अभ्यास हरएकको अवश्य करना चाहिए। प्राणायामके अभ्यासका प्रारंभ करनेका उत्तम समय आठ वर्षकी आयुही है। इस आयुमें प्राणायामका अभ्यास प्रारंभ करके, शनैः शनैः वह अभ्यास बढाया जावे, तो दस बारह वर्षमें बड़ीही उत्तम प्राणायामकी सिद्धि हो सकती है। इस प्राणायामकी सिद्धिके साथ इंद्रिय संयम और मन संयम भी सिद्ध होता है। परंतु विधिको छोडकर और अपनी शक्तिका विचार न करते हुए जो प्राणायाम करते हैं, उनका नुकसान होता है और आरोग्य प्राप्त होनेके स्थानपर रोगही बढते हैं। इस विष-

यमें सबसे प्रथम यह बात ध्यानमें धरना चाहिए, कि प्राणायामों की संख्या और प्रत्येक प्राणायामकी अवधि शनैः शनैः बढाना चाहिए। प्राणायामसे उत्साह प्राप्त होता है, इसलिये प्राणायाम करनेवालेकी ऐसी प्रवृत्ति होती है कि, मैं बहुत अभ्यास बढाऊं। परंतु अपनी शक्तिसे अधिक प्राणायाम करनेसे ही हानि होती है।

यदि प्राणायाम करनेवाले प्रथम दो वर्ष इस बातका विशेष ख्याल रखेंगे तो उनका नुकसान कभी नहीं हो सकेगा। अविचारसे ही नुकसान होता है।

जैसा शरीरका व्यायाम पहिले दिन बहुत करनेसे शरीर दर्द करने लगता है, परंतु थोडाथोडा व्यायाम प्रतिदिन करनेसे और शनैः शनैः बढानेसे साल दो सालकी अवधिमें बहुत व्यायाम करने परभी शरीर दुखता नहीं। उसीप्रकार प्राणायामका व्यायाम करनेसे फेफडे और आसपासके सो स्नायु प्रारंभमें खट्टे हो जाते हैं, क्योंकि बाहिरके अंगोंकी अपेक्षा अंदरके अंग बडे कोमल होते हैं, यदि इस प्रारंभिक अवस्थामें शक्तिसे अधिक व्यायाम किया जावे, तो अंदरके स्नायु क्षीण होते हैं। इसलिये प्रारंभिक अवस्थामें अपनी शक्तिसे कम प्राणायाम करना चाहिए और दो वर्ष नियमपूर्वक अभ्यासके पश्चात् साधक जो चाहे सो कर सकता है।

प्राणायामके अभ्याससे फेंफडे फैल जाते हैं और यह अभ्यास न होनेसे फेंफडे संकुचित होते जाते हैं। फेंफडोंका विस्तार आरोग्यका साधक और फेंफडोंका संकोच रोगका सहायक है। ये दोनों फेंफडे ऐसे हैं कि नियमपूर्वक योग्य अभ्यास करनेसे बलवान होते हैं, परंतु

नियम विरुद्ध, प्रमाणसे अधिक, अयोग्य रीतिके अभ्याससे किंवा अभ्यासके अभावके कारण येही फेंफड़े वहांही क्षीण होते जाते हैं। इसकारण प्रत्येक मनुष्यको नियमानुकूल प्राणायामका अभ्यास करना अत्यंत आवश्यक है।

पाठक श्वास लेकर देखेंगे, तो उनको स्वयं पता लग जायगा कि श्वास अंदर भर देनेसे छाती फैलती है और श्वास बाहिर छोडनेसे छातीका संकोच होता है। यही छातीका संकोच और विस्तार आरोग्यके साथ विशेष संबंध रखता है। पाठक छातीके चारों ओर रस्सी लगाकर देखें कि अपनी छातीके संकोच और विस्तारमें कितने अंगुलियोंका फरक है। अर्थात् श्वास छोड़नेपर जितना छातीका घेर होता है, उससे कितना अधिक घेर श्वास लेनेपर होता है, यह देखना चाहिए। श्वास और उच्छ्वास के समय की छातीके घेरमें चौवीस अंगुलियोंका अंतर होना चाहिए। जो छोटी उमरमें प्रारंभ करके बारह वर्षतक नियम पूर्वक प्राणायामका अभ्यास करते हैं, उनकी छातीमें श्वासोच्छ्वास के समयके परिधिका अंतर चौवीस अगुलियां होता है। जिन लोगों नें कभी प्राणायाम किया ही नहीं, उनके श्वासोच्छ्वासके समयकी छातीके विस्तारका अंतर चार पांच अंगुलियां ही होता है। जितना यह अंतर अधिक होगा, उतना अधिक लाभ हो सकता है, इसलिये प्राणायाम की ओर पाठकोंका तथा जनताका चित्त आकर्षित होना चाहिए।

श्वास और उच्छ्वासके समयकी छातीके परिधिका अंतर जिस समय कम होने लगता है उस समय निःसंदेह समझना चाहिए कि

मृत्यु पास आरहा है; तथा जब बढने लगता है तब समझना चाहिए कि अपनी आयु बढ रही है । जब यह अंतर आठ दस अंगुलियोंसे चौवीस अंगुलियोंतक रहेगा तब किसी प्रकार मृत्युका भय नहीं होगा । इसीलिये प्राणायाम को महा मृत्युंजय कहते हैं ।

जो मनुष्य जवानीमें ही मर जाते हैं उनकी छातीका विचार करना चाहिए । विस्तृत छातीवाले मनुष्य सौमें पांच भी जवानी में मरते नहीं । यदि सब लोग आठ वर्षकी आयुसे नियम पूर्वक प्राणायाम करेंगे तो जवानी के मृत्युका भय निःसंदेह हट जायगा ।

मनुष्य प्रतिसमय जितना श्वास अपने फेंफडोंमें भर सकता है । उतनी ही उसकी 'श्वसन-शक्ति' है । यह शक्ति जिस मनुष्यमें जितनी अधिक होगी, उतने ही प्रमाणसे उसका आयु आरोग्य बल आदि अधिक हो सकता है । प्राणायाम ही एक अभ्यास है कि जिससे यह श्वसनशक्ति बहुत बढ सकती है । दूसरा कोई उपाय इसके लिये नहीं है । जो पहाडी लोग होते हैं उनको पहाड़ोंपर चढने उतरनेके कारण वारंवार दीर्घश्वास लेना पड़ता है, इस कारण उनकी छाती बड़ी विशाल हुआ करती है । अर्थात् यदि शहरके लोग नियमपूर्वक प्राणायाम करेंगे तो उनकी भी छाती निःसंदेह विस्तृत होगी ।

जो गवय्ये लोग होते हैं, यदि वे सदाचारी होंगे तो प्रायःउनको छातीके रोग होंगे ही नहीं । इसका कारण स्पष्टही है कि उनका गानेका अभ्यास प्राणवायुके निरोधसेही होता है । उनके फेफड़ोंको पर्याप्त व्यायाम मिलता है, इसलिये उनका स्वास्थ्यभी

बहुधा ठीक रहता है। जिनका स्वास्थ्य बिगडता है उनके दुराचरणमें और अनियममें उनकी बीमारीका मूल होता है।

प्राणायाम करनेसे सबही बीमारियां दूर हो सकतीं ह। जो लोग प्राणायामका नियमपूर्वक अभ्यास नहीं करते, उनको बद्ध-कोष्ठ (कबजी), मंद अग्नि, भूख न लगना, अजीर्ण, अरुचि, ज्वर होनेकी प्रवृत्ति, स्नायुकी दुर्बलता, मज्जातंतुकी कमजोरी, सिरदर्द, मस्तकमे अन्य रोग, पांडुरोग, रक्तदोष, रक्तहीनता, इत्यादि अनेक रोग होते हैं। उनका फीका चेहरा होता है। पेटकी सब बीमारियां, श्वासके रोग और मज्जातंतुके तमाम रोग उनको हो सकते हैं कि जो विधियुक्त प्राणायाम नियम पर्वक नहीं करते। जो विधिपूर्वक प्राणायाम करेंगे उनका स्वास्थ्य ठीक रहने और उनके मनका उत्साह बढनेमें कोई संदेह ही नहीं है। क्षयरोग जो सब रोगोंका राजा है, जिसका नाम तपे—दिक् है, वह प्राणायाम करनेवालोंके पास आ ही नहीं सकता, जो लोग योजना पर्वक प्राणायाम करेंगे, उनको जो जो विविध बीमारियां पहिलेसेही होंगी, वह सब उनसे निवृत्ति हो सकती हैं। इस प्रकार यह प्राणायाम रूपी अद्भुत अमृत योगियोंनें निर्माण किया है।

साधारण लोग जिस रीतिसे श्वास लेते हैं, उस प्रकारके श्वास लेनेमें फेंफडोंका आधा भाग ही काममें आता है और आधा भाग सदा निकम्मा रहता है। मकानमें जो कमरे सदा बंद रहते हैं उनमें कूड़ा और कचरा जमा होता है, उसी प्रकार इन अनुपयुक्त फेंफडोंके आधे भागमें सब प्रकारके मल, दोष, रोगबीज आदि सब

विष जमा होता है, ये वहां रुकने लगते हैं, दाह कर देते हैं और हरएक रोगके लिये सहायता करनेकी पूरी तैयारी करते रहते हैं। अपने ही मकानमें अपने ही आलस्यके कारणसे अपने ही शत्रु बढ़ते रहते हैं। जो विधिपूर्वक प्राणायाम करेगा, उसके फेफड़ोंका सब भाग श्वासोच्छ्वासके कार्यमें उपयुक्त होता है, इसलिये वहांके किसी स्थानपर शत्रुओंको ठहरनेके लिये बिलकुल स्थान नहीं मिल सकता। सब फेफड़ोंके भाग पूर्णरीतिसे विकसित होते हैं और सब शरीरमें नवजीवनका संचार होने लगता है। इसी लिये समझा जाता है कि प्राणायामका अभ्यास आरोग्य, दीर्घआयु और बलकी वृद्धि करने वाला है। यदि प्राणायामके द्वारा श्वसन इंद्रियको ठीक बलवान किया जावेगा तो इसमें कोई संदेह ही नहीं कि प्रतिसैकड़ा पचास रोग स्वभावतः ही दूर हो जांयगे, और बाकी जो होंगे वे भी दृढ़ मूल नहीं होंगे।

आप यदि नियम पूर्वक और विधिके अनुकूल प्रतिदिन प्राणायाम करेंगे तो प्रारंभसे ही आपका मानसिक उत्साह और उल्हास बढ़ेगा, निरुत्साह आपके पास कभी नहीं आवेगा, आपके मुखपर हास्य टपकने लगेगा, उदासीनता आपसे दूर भाग जायगी, आपके जीवनमें ही बड़ा भारी फरक होने लगेगा, आप ही आश्चर्यचकित हो जायंगे कि इस थोडेसे प्राणायामसे कितना आश्चर्यकारक फरक जीवनमें हो जाता है, आपकी पुरुषार्थ करनेकी शक्ति बढ़ने लगेगी, प्रत्येक अवयवमें कार्यक्षमता आ जायगी, आपका रक्त शुद्ध होने लगेगा, आपके चेहरेपर अधिक लाल रंग चमकने लगेगा, आपके नाखून अधिक लाल दिखाई

देंगे, यही आपकी रक्तशुद्धिका प्रमाण है, आपकी थकावट दूर होगी, आपके शरीरमें सर्दी सहन करनेकी शक्ति बढेगी, आपकी पचनशक्ति बढेगी, उत्तम गाढ निद्रा आनेसे आपका चित्त प्रसन्न रहेगा, सिरके विकार दूर होनेसे आप विचारके कार्य करनेके लिये योग्य होंगे, क्रमशः आपके श्वासकी दुर्गंधि हटती जायगी और श्वासमें सुगंधि बढेगी, आपका आवाज अच्छा और निर्दोष होगा, श्वास कास दमा जुकाम बलगम खांसी आदि विकार आपके पास नहीं आयेंगे। छाती फैलने और बढने लगेगी, पीठ गर्दन और छातीके स्नायुओंमें प्रमाणबद्धता आवेगी, शरीरका तेज बढेगा, आपकी दृष्टि निर्दोष होगी और आपके अस्तित्वका निज आनंद आपको प्राप्त होने लगेगा।

प्राणायामसे ब्रह्मचर्यका पालन सुखसाध्य होता है, वीर्यकी स्थिरता होने लगती है, प्राण वश होनेसे मन वशमें होने लगता है। प्राण और मन जहां वश होते हैं वहां कोई दोष नहीं ठहर सकते, इस लिये शुद्ध आनंद प्राप्त होनेमें बडी ही सहायता होती है। ऋषिमुनि इस प्राणायामको वश करके अमरपनके आनंदमें मस्त हो जाते थे। जो इसका अभ्यास करेंगे उनको भी यह आनंद प्राप्त हो सकता है।

शारीरिक और मानसिक बल प्राप्तिके साथही आत्मिक बलभी इसीसे मिलता है। ध्यान धारणा और समाधिकी सिद्धिभी सब प्रकारसे प्राणायामपरही निर्भर है। इसप्रकार स्थूल और सूक्ष्मशक्तियोंका विकास इसके अभ्यासससे होता है।

प्राणायाम करनेके समय शुद्ध परमात्माकी प्राणमय शक्तिकी भावना मनमें धारण करना चाहिए। जिस समय प्राण अंदर जा रहा हो, उस समय मनमें इस बातकी धारणा करना चाहिए कि विश्वव्यापक प्राण-रूपी अमृतका रस मेरे अंदर जारहा है। जब अंदर कुंभक करना होगा, उस समय समझिए कि उस विश्वव्यापक पारमात्मिक प्राण-शक्तिका अंश मेरे अंदर स्थिर हो रहा है और उससे मैं अधिक बलवान हो रहा हूं। जब रेचक द्वारा उच्छ्वासको बाहिर फेंकना हो, उस समय ऐसी भावना कीजिए कि मेरे सब दोष इसके साथ बाहिर जारहे हैं और मैं निर्दोष हो रहा हूं। इसप्रकार की भावना के साथ किया हुआ प्राणायाम बहुतही विलक्षण फल देनेवाला होता है। आशा है कि साधक प्राणायामका अभ्यास विधिपूर्वक करेंगे और लाभ उठायेंगें।

प्राणायाम की विशेषता।

(१०)

योग साधनका प्रत्येक अंग मुख्य है, परंतु सबसे प्रधान प्राणायाम है। प्राणायाम के विना योग वैसाही है, कि जैसा आत्माके विना शरीर। प्राणायामसे शरीर, इंद्रिय, मन आदिकी शुद्धता निर्दोषता और सबलता प्राप्त होती है। युक्तिपूर्वक प्राणायाम करनेसे शरीर और मनका पूर्ण आरोग्य प्राप्त हो सकता है, और शरीरमें स्वस्थताभी कायम रह सकती है। दीर्घ आयुष्य प्राप्त करनेके जो-अनेक साधन हैं उनमें प्राणायाम सबसे श्रेष्ठ है। प्राणायामसे वीर्यकी स्थिरता होती है, और इसीके अभ्याससे मनुष्य ऊर्ध्वरेता बन सकता है। अर्थात् सुप्रजा निर्माण की शक्तिभी प्राणायामद्वारा प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त मनकी स्थिरता, ध्यानकी सिद्धि और समाधिकी प्राप्ति भी सिद्ध करनेवाला यह सबसे श्रेष्ठ उपाय है। यह समझ लीजिए कि प्राणोंका आयाम होनेसे शरीरकी सबही शक्तियां अपने स्वाधीन होतीं हैं। और उस मनुष्यमें विलक्षण दैवी शक्तिका स्फुरण होता है।

प्राणायाम के विषयमें कई लोगोंका यह गलत विचार है कि, जो केवल श्वास अंदर रोकने आदिकोही प्राणायाम मानते हैं। प्राणायामके समय वायुको अंदर लेना, वहां उसको रोकना और पश्चात् उसको बाहिर फेंकना होता है, परंतु केवल वायुही हमारा प्राण नहीं

है। जो समझते होंगे कि केवल यह वायुही हमारा प्राण है, वे अशुद्ध विचार मनमें धारण करते हैं। वास्तविक यह है कि **परमात्माकी विश्वव्यापक प्राणशक्ति सूर्यके द्वारा इस वायुमें स्थिर की जाती है, उसका अपने अंदर स्वीकार करना प्राणायामका मुख्य उद्देश्य है।** जो इस बातको नहीं जानते, उनको प्राणायामसे उतना लाभ नहीं हो सकता कि जितना होना चाहिए। प्राणायाम करनेके समय मनकी दृढ भावना ऐसी करनी चाहिए कि "**विश्वव्यापक प्राणको मैं अपने अंदर स्थिर कर रहा हूं, मेरे सब अंगों और अवयवोंमें वह प्राण शक्ति पहुंच रही है, और वहां नवीन जीवन उत्पन्न कर रही है। प्राणायामसे मेरे सब दोष दूर हो रहे हैं और मेरी पवित्रता हो रही है।**" इस भावनाके साथ किया हुआ प्राणायाम बडाही लाभदायक होता है।

श्वास, श्वासका निरोध और उच्छ्वास येही प्राणायामके तीन भाग हैं। प्राणका नासिका स्थान है, इसमें भूल नहीं होनी चाहिए, श्वास और उच्छ्वास नासिकासेही करना चाहिए। कभी भूलसेभी मुखद्वारा श्वासोच्छ्वास करना नहीं चाहिए। विशेष प्रकारके विशेष अवस्थामें करने योग्य प्राणायामोंको छोडकर बाकी सबही प्राणायाम तथा सार्वकालिक श्वासोच्छ्वास क्रिया निश्चयसे नासिकासे करनी चाहिए। **नासिकासे किया हुआ श्वासोच्छ्वास आयुष्य और नीरोगता बढाता है, परंतु मुखसे किया हुआ श्वासोच्छ्वास आयुष्यको क्षीण करता हुआ, रोगोंकोभी बढाता है।"**

बहुत लोग ऐसे होते हैं, कि जो अपनी नासिकाको साफ और स्वच्छ नहीं रखते; उसमें बलगम आदि भरा रहता है, इसलिये उनका नाक सदा बंदही रहता है। जब नाक बंद होता है, तब मुखमेंही उनका श्वासोच्छ्वास चलता है। नाक सदा बंद रहनेके कारण उनको नाकसे वारंवार "खुं, खुं" ऐसा बहुत बुरा शब्द करनेका अभ्यास हो जाता है। कइयोंका यह बुरा अभ्यास यहांतक कष्टदायक होता है कि उनके पास बैठना दूसरोंके लिये कठिन हो जाता है, और सभाओंमेंभी उनके इस प्रकारके कर्णकठोर शब्दसे लोगोंको बडी तकलीफ होती है। परंतु उनको इस बातका पतातक नहीं होता। इनको उचित है कि वे अपना नाक सदा स्वच्छ रखें और प्रयत्नके साथ मुख बंद रखते हुए नासिकासेही श्वासोच्छ्वास करें। प्रथम आरंभमें थोडासा कष्ट होगा परंतु थोडेही दिनोंके पश्चात उनका श्वास नाकसेही चलता रहेगा।

बाल्यपनमें मातापिता ख्याल नहीं करते, इसलिये कई बच्चे मुखसे श्वास लेने लग जाते हैं, सोते समय मुख खोलकर सोते हैं और जो मुख खोलकर सोते हैं, उनको मुखसे ही श्वास लेनेका बुरा अभ्यास होता है। इस प्रकार बचपनमें ही बीमारियोंके स्वागतकी तैयारी होती है। ये जब तरुण होते हैं, तब इनको मुख खुला रखकर श्वास लेनेका ही अभ्यास रहता है, और इस रीतिसे बीमारियां बढ जाती हैं। जागते हुए अथवा सोते हुए जब लडका मुख खुला रखता है, तब उसका मुख बंद करना चाहिए, ऐसा वारंवार करनेसे उसका मुख ठीक रहने लग जाता है, और उसका

श्वास नासिकासे होने लग जाता है। बालपनमें जुकाम होनेके कारण नाक बंद हो जाता है, उस कारणभी लडके मुख खुला रखने लगते हैं। इस समय मातापिताको चाहिए कि उनका नाक बारंबार साफ करते रहें। ताकि नाक साफ रखनेका अभ्यास उन बालकोंको भी हो जावे।

यही बचपनका अभ्यास बडी आयुमें भी रहता है और बडे बडे शिक्षित और चतुर लोग मुख खोल कर ही श्वास लेते रहते हैं। और अपनी ही आयुका नाश करते हैं। इनको उचित है कि, वे इस बुरे अभ्यासको छोड देवें। नाक अंदरसे भी स्वच्छ करना चाहिए। जो प्राणायामका अभ्यास करना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपनी नासिकाको अंदरसे भी स्वच्छ और निर्मल करनेका यत्न करें। कुयेका ताजा शीत जल कटोरीमें लेकर नासिका द्वारा अंदर खेंचनेका अभ्यास करनेसे नाककी आंतरिक पवित्रता हो जाती है। एक ओर के नासिका छिद्रको बंद करके दूसरे नासिका छिद्रसे पानी अंदर खींचनेका यत्न करना चाहिए। जोरसे नहीं खींचना परंतु शनैः शनैः खींचना चाहिए। यदि जोरसे खींचा जायगा तो संभवतः सिरमें थोडी देर तक पीडा होगी। यद्यपि इस पीडासे कोई हानिकर कष्ट नहीं होते, तथापि इस प्रकारका अविचारसे खींचनाभी एक बुरी ही बात है। यह पानी नाकसे पीनेका अभ्यास बहुत ही सुगम है, और अनुभवसे देखा है कि योग्य रीतिसे समझानेपर छोटे छोटे लडके भी सुगमताके साथ इस प्रकार पानी पीते हैं, और उनको बहुत फायदा भी होता है।

प्रतिदिन सवेरे उठते ही कुयेका पानी निकाल कर उसको छान कर पीना चाहिए। आवश्यकतानुसार कम अथवा अधिक पीनेमें भी कोई हानि नहीं है। नलकेका पानी जहां अधिक गर्म अथवा अधिक ठंडा नहीं होता, वहां लेनेमें कोई हानि नहीं है। तात्पर्य यही है कि कृत्रिम रीतिसे बना हुआ अधिक उष्ण अथवा अधिक ठंडा पानी नहीं लेना चाहिए, जो हानिकारक होता है। स्वाभाविक कुयेके पानीकी जितनी ठंडक होती है उतनी ही अच्छी होती है। इस पानीमें थोडासा अल्प नमक डालनेसे भी अधिक गुणकारी और शुद्धिकारक होता है।

नकसीरके लिये यह जलपान सर्वोत्तम उपाय है। जब नाकसे खून बहने लग जाता है उसी समय ठंडापानी नाकसे पीनेसे तत्काल नकसीरका खूनका प्रवाह बंद हो जाता है। नाकमें फोड़े फुनसी आदि विकार होते हैं और बदी बदबू फैलती है, तथा नाकमें खुश्कीसी मालूम होती है और वारंवार नाकमें सख्त पदार्थ जम जाता है और अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं, उन सबकी निवृत्ति इस प्रकारके नासिकाद्वारा जलपान करनेसे होती है। बहुतसे सिरदर्द और, मुखरोग, नासिका रोग, पेटकी कब्जी आदि, खुष्की, सुस्ती आदि अनेक व्याधियोंका शमन इस प्रकारके नासिका द्वारा किये हुए जलपानसे होता है।

दोनों नासिकाके छिद्रोंको इस प्रकार निर्मल और शुद्ध करनेसे नासिका द्वाराही प्राण संचार करने लग जाता है, और एक प्रकारका विलक्षण आनंद प्राप्त होता है। प्रारंभमें इस प्रकार दिनमें दो चार वार करनेसे नासिका निर्मल हो जाती है और प्रतिदिन प्राणायामका अभ्यास करते रहनेसे फिर कभी नासिकामें मलका संचय नहीं होता।

जिनकी नासिका हमेशा जुकामके कारण बिलकुल बंद हो जाती है और उस प्रकार पानी पीना भी मुश्किल हो जाता है। वे यदि नरम रस्सी उत्तम घीमें भिगोकर नाकमें दो चार बार डालेंगे तो नासिकाका द्वार खुल जाता है। इस कार्यके लिये बड़के छिल-केमें जो अंदर लंबे धागे होते हैं, उसकी नरम और बारीक रस्सी बनाकर रखदेनी चाहिए। जिसको इधर उधर बारीक धागे न हों और जो सीधी सरल, विना ग्रंथि आदिके बनी हुई, रस्सी होवे। नाकमें यह रस्सी थोडी थोडी डालनेसे प्रथम दो चार छींके आ जाती हैं, पश्चात यह रस्सी आगे जाती हुई कंठ तक पहुंच जाती है। थोड़ा थोड़ा अभ्यास करनेसे नाकमें डाली हुई रस्सी कंठके द्वारा मुखमें लेकर बाहिर निकाली जा सकती है। सावधानीसे इसको करना उचित है। यद्यपि इसमें कठिनता कोई भी नहीं है, तथापि असावधानीके कारण कष्ट हो सकते हैं।

कई लोग नाकको साफ करनेके लिये नस्वारका प्रयोग करते हैं, परंतु यह नस्वारका उपयोग बहुतही घातक है। इस लिये योगाभ्यास करनेवाला कोई मनुष्य कभी नस्वारका उपयोग न करे, इतनाही नही परंतु किसी प्रकारसे तमाखूका सेवन कभी न करे। अन्य किसी प्रकारका धूम्रपान अथवा अपेयपान न करे। तमाखू पीने अथवा खानेवालेके शरीरमें तो विष पहुंचही जाता है, परंतु इस तमाखूके विषका इतना भयानक परिणाम होता है कि, उसके लड़कोंमें भी विविध व्याधियां जन्मसे रहती हैं। अस्तु।

उक्त प्रकार नाक निर्मल और स्वच्छ रखनेके पश्चात् नाकसे ही हमेशा श्वासोच्छ्वास करनेका यत्न करना चाहिए। प्राणायाम

का अभ्यास जो सज्जन नियमपूर्वक करना चाहते हैं, उनको विशेषत: अपनी नासिकाकी निर्मलताका ख्याल अवश्य रखना चाहिए। यहां कई पूछेंगे, कि नाकसे श्वास लेनेका इतना महत्व क्या है? और मुखसे लिया हुआ श्वास इतना हानिकारक क्यों होता है? इसके उत्तरमें बहुत कुछ कहा जा सकता है, परंतु सारांशरूपसे यहां इतनाही समझ लीजिए कि नाकमें परमेश्वरनें जितनीं छाननियां बनाई हैं उतनी मुखमें नहीं हैं। नाकमें बाल हैं उनके कारण हवाके साथ कोई दूसरा पदार्थ अंदर नहीं घुस सकता, मुखमें कोई वैसे बालोंके जाले नहीं हैं, इसलिये मुखके द्वारा लिये हुए श्वासके साथ सैंकडों अशुद्ध पदार्थ फेंफडोंमें पहुंचकर रुधिरमें मिलकर रोग उत्पन्न करते हैं। तथा नाकमें श्लेष्मा रहता है उसपर हवा टक्कर खाती है और उस समय हवाके साथ जो जो छोटे छोटे कृमि आदि अंदर घुसनेका यत्न करते हैं वे उस श्लेष्मामें चिपक जाते हैं, और श्लेष्माके साथ वे बाहर ही फेंके जाते हैं। इस प्रकारके उचित प्रबंध नाकमें हैं, क्योंकि नाकही श्वास लेनेके लिये योग्य बनाया गया है। इस प्रकारके प्रबंध मुखमें न होनेके कारण मुख श्वासोच्छ्वास करनेके लिये सर्वथा अयोग्य है। इसलिये विशेष सावधानताके साथ नासिका द्वाराही श्वास लीजिए।

नाकसे श्वास लेनेका अभ्यास होनेपर भी श्वासोच्छ्वासकी रीतिका थोडासा यहां विचार करना आवश्यक है। छातीमें दोनों तरफ अनेक पसलियां हैं। आप अपना हाथ छातीपर घुमाकर अनुभव लीजिए कि छातीसे कमरतक दोनों ओर ये पसलियां कैसी हैं। इनके अंदर छातीके दायें और बांयें भागोंमें दो फेंफडे हैं।

अपने विषयके सुभतिके लिये समझ लीजिए कि, इस प्रत्येक फेंफड़ेके तीन भाग हैं। पहिला भाग गलेकी ओर है, बीचका भाग छातीके मध्यमें है और नीचला भाग पेटकी ओर है। साधारण लोग जो श्वासोच्छ्वास करते हैं, वे पहिले अर्थात् गलेके साथवाले फेंफडोंके हिस्सेमें ही करते हैं, और इसी कारण फेंफडोंके नीचले भाग काममें आते ही नहीं। जो भाग काममें आता नहीं है वह निकम्मा रहनेके कारण बिगड़ने लगता है, और जहां बिगाड शुरू होता है वहां विविध बीमारियां अपना स्थान जमालेती हैं।

यही कारण है कि छातीकी बीमारियां, प्राणायामका अभ्यास कम होनेके कारण प्रतिदिन बढ रही हैं। अब पाठकोंके ध्यानमें आया ही होगा, कि फेंफडेके निचले और बीचवाले भागमें प्रथम हवा पहुंचनी चाहिए। तब ही पूर्णश्वास हो सकता है। यह पूर्ण श्वास ही आरोग्यवर्धक है अधूरे श्वास हानिकारक हैं। इसलिये साधारण श्वास लेनेके समयमें भी ऐसी सावधानता रखनी चाहिए, कि पेटके तरफका फेंफडेका नीचला भाग भी काममें आ सके। प्राणायामका अभ्यास करनेके पूर्व यह उसकी तैयारी अवश्य करनी चाहिए, इसलिये यहां विस्तारपूर्वक इस बातका स्पष्टीकरण किया है।

प्राणायामकी पूर्व तैयारीका अभ्यास करनेके लिये चाहे आप खडे रहिए, चाहे बैठ जाइए, दोनों अवस्थाओंमें आपका पीठका पृष्ठ वंश सीधा समरेखामें रहना चाहिए और गला भी सीधा समसूत्रमें रखना चाहिए। अब आप दीर्घ श्वास लेनेका यत्न कीजिए और सबसे प्रथम फेंफडोंके नीचले भागमें हवा भरनेका यत्न कीजिए, प्रारंभमें पेटको अंदर न दबाइए। यदि पेटको अंदर दबायेंगे

और ऊपरकी छातीको फैलायेंगे, तो केवल ऊपरकी छातीके भागमें ही हवा पहुंचेगी; इस कारण आपको उचित है कि श्वास लेनेके समय आरंभमें पेट ढीला रखिए और फेंफडोंके नीचले भागमें हवा पहुंचाइए। थोडे ही अभ्यासमें आपको उक्त बातका पता लग जायगा।

यदि आपको अनुभव लेना है, तो अपना हाथ पेट पर रखिए और श्वास अंदर लीजिए, आपके हाथको पता लग जायगा कि अंदर हवा आ रही है। जब आप श्वास बाहिर फेकेंगे तब भी आपके हाथको पता लग जायगा, कि हवा बाहिर जा रही है। तात्पर्य श्वासका प्राणवायु सबसे प्रथम फेंफडोंके नीचले भागोंमें पहुंचना चाहिए, तत्पश्चात् बीचके भागमें और सबसे पश्चात् फेंफडेके ऊपरके भागमें श्वास पहुंचने लगेगा तब ही छाती फैलनी चाहिए।

श्वास बाहर निकालनेके समय भी शनैः शनैः निकलना चाहिए और सब ही श्वास पूरा बाहिर फेंकना चाहिए। श्वास लेने अथवा बाहिर छोडनेके समय एक ही वेगसे काम करना चाहिए। धक्के देनेसे फेंफडा कमजोर हो जाता है।

इस प्रकार नियमपूर्वक और सावधानीके साथ अभ्यास करनेसे प्राणायामकी पूर्व तैयारी होती है। आप अपना श्वास कैसा चल रहा है इसका विचार कीजिए, और कैसा चलना चाहिए इसका निश्चय कीजिए; तो आपको ही स्वयं पता लग जायगा कि किस प्रकारसे यह प्राथमिक अभ्यास करना चाहिए। आशा है कि आप इस प्रकार अपनी पूर्व तैयारी करेंगे।

आसन और प्राणायामके विषयमें मेरा अनुभव।

(११)

(लेखक—पं. " **अभय** " देवशर्माजी)

योग साधनकी सबही बातें अनुभवकी हैं। केवल तर्कनासे जो लोग योगकी प्रक्रियाओंका खण्डन अथवा मण्डन करनेकी इच्छा करते हैं, वे न केवल स्वयं भूलपर रहते हैं, प्रत्युत पाठकों को भी उलटे मार्गपर चलनेका पातक उठाते हैं। मैंने कई लोगोंके योग-विषयक लेख पढ़े और व्याख्यान तथा वार्तालाप सुने, उनसे मुझे यही बात प्रतीत हुई कि जो अनुभवी पुरुष अपने अनुभवकी बात लिखते वा बताते हैं, वह तो सदा सर्वदा एक जैसी ही होती है; परन्तु अपना अज्ञान छिपाने के लिये जो लोग, अनुभव न प्राप्तकर, केवल तर्काडम्बरसे ही बातें लिखते और कहते रहते हैं; उनसे सत्य धर्मके प्रचारमें बड़ी ही हानि होरही है। इस लिये जैसा कि मेरा प्रारम्भसेही विचार रहा है, मैं यहां केवल उतनी ही बात लिखने और कहने लगा हूं जितना कि मुझे साफ साफ अनुभव हुआ है।

इस लेखमें मैं आसन और प्राणायाम की कुछ वह बात प्रकाशित करनेका यत्न करूंगा जिसका कि अनुभव मैंने अपने शरीरपर गत दो तीन वर्षोंमें देखा है। मुझे विश्वास है कि जो मनुष्य " **आसन और प्राणायाम** " करेंगे, उनकोभी इसी प्रकार अनुभव आ सकता है। इसमें किसी प्रकारका धोखा नहीं है। मेरा यह

अनुभव है, कि जो लोग नियम विरुद्ध आचरण करते हुए प्राणायामादिक क्रियाओंका अनुष्ठान करनेकी चेष्टा करते हैं, उनके शरीर परही विरुद्ध परिणाम दिखाई देता है। परन्तु जो मनुष्य आहार विहार तथा अनुष्ठान योग्य विधिपूर्वक सुनियमोंके अनुसार विचारकर करते हैं, और असंयम वा हठके वश अनियम में प्रवृत्त नहीं होते, उनको योगसाधनमे कभीभी नुकसान उठाना नहीं पडता। इसलिये पहिली बात यह है, कि जो लोग योग साधनसे अपनी सब प्रकारकी उन्नति करना चाहते हैं, उनको उचित है, कि वे किसी प्रकारके अनियम में प्रवृत्त न होव। आहार, विहार और अन्य कर्मोंमें विचारपूर्वक दृढतासे सुनियमका पालन करनेमे ही योगाभ्यास लाभदायक होता है; परंतु जो मूर्खता व हठके कारण अनियमसे व्यवहार करते हैं उनको योगाभ्याससे बड़े कष्ट होते हैं।

योगसाधन करनेकी ओर मेरी बहुत दिनोंसे प्रवृत्ति थी। परंतु साधन के अनुष्ठानका प्रारंभ संवत् १९७४ तक नहीं हुवा। मुझे बाल्यअवस्थासेही कोष्ठबद्धता (कब्ज) का रोग था। यह संभवतः पैतृक, अर्थात जिसको वैदिक परिभाषामें ‘ क्षेत्रिय ’ कहा जाता है, था। मेरी बद्ध कोष्ठता यहांतक भयानक अवस्था तक पहुंच चुकी थी, कि मुझे बडीही कठिनतासे एक सप्ताहमें अधिकसे अधिक दोबार शौच आया करता था।

मेरा अध्ययन कांगडी गुरुकुलमें हुआ है, और मैं इसी विश्व-विद्यालयका स्नातक हूं। इस गुरुकुलका स्थान गंगाके पवित्र तटपर है, और यद्यपि यहाका जल वायु तो मेरे अनुकूल सिद्ध नहीं हुवा

तथापि यहांका नगरोंमे खुला शुद्ध वायु अवश्यही स्वास्थ्यप्रद होनां चाहिये था ।

भागीरथीका निसर्गनिर्मल पवित्र जल हिमालयकी परिशुद्ध हवा, तथा गुरुकुलका सात्विक भोजन और सबसे बढकर स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंका सत्य ज्ञान मिलनेपरभी मेरी कब्जी हटी नही और प्रतिदिन बढती ही रही; इससे पाठकोंको पता लगेगा कि, इस जन्म प्राप्त बीमारीका वेग मेरे शरीरमें कितना प्रबल था । मुझे विश्वास है, कि यदि मैं गुरुकुल भूमिमें न होता और किसी अन्य नगरमें मैं विद्याभ्यास करता, तो इस कब्जीके कारण मेरा जीवन शीघ्रही समाप्त होनेमें कोई संदेह नहीं था ।

नियम पूर्वक रहने पर भी किसी किसी समय एक एक सप्ताह भरमें एकबार भी शौच नहीं होता था, और अंतमें बस्ति (एनिमा) से शौच करना पडता था । पाठक कदाचित कल्पना कर सकते है कि जिसको आठ आठ दिन शौच न होता हो, उसको कितना कष्ट अनुभव करना पडता है । दिनमें एकवार खुली रीतिसे शौच आना उत्तम स्वास्थ्यका चिन्ह है । दिनमें अधिकवार शौच आना अथवा सप्ताह भर शौच ही न होना अस्वास्थ्यका ही लक्षण है । इस प्रकार भयंकर कब्जीके कारण किसी समयमें भी मुझे स्वास्थ्यका सुख प्राप्त नहीं हुआ ।

मेरा चित्त सदा ही उत्साह रहित, म्लान और उदासीन रहता था; भूख क्या पदार्थ है मुझे पता नहीं था, क्यों कि मुझे कभी भूख लगती ही नहीं थी; भूख न लगनेके कारण अन्नको

रुचि प्रतीत नहीं होती थी; कितना भी उत्तम अन्न क्यों न बनाया गया हो, मुझे वह कभी स्वादु नहीं लगता था। भूखके विना अन्नका आनंद कैसे प्राप्त हो सकता है? इस प्रकार खुला शौच आनेका सौख्य नहीं, भूख नहीं, अन्नकी रुचि नहीं। ऐसा नित्य अवस्था रहनेके कारण अन्नका पचन भी नहीं होता था, और पचन न होनेके कारण शरीरमें रुधिर बनता नहीं था, इस लिये मेरा शरीर रक्त हीन पांडुरोगीके समान सदा शुष्क, फीका और निस्तेज रहता था।

उक्त कारणोंसे मन सदा उदासीन और उत्साहहीन रहता था, स्वभाव भी बहुत ही चिड़चिड़ा था, सब कुछ बुरा ही बुरा लगता था, किसी समय स्वास्थ्यके आनंदका मुझे अनुभव नहीं होता था। सिरदर्द तो मेरा प्रायः साथी ही था। कभी कभी यह सिरदर्द इतना अधिक होता था कि उसके कारण मुझे कुछ भी सूझता ही नहीं था। उसके पश्चात् ज्वर भी हो जाया करता था।

यदि मैं खान पान आदि सबही विषयोंमें अत्याधिक सावधानता न रखता तो मेरी अधिकही दुर्दशा होती। परन्तु मैं सदा ही असाधारण सावधानता रखता था, इसलिये केवल:नियमपूर्वक रहनेके कारण हरएक व्याधि मर्यादासे अधिक बढ़ती नहीं थी। इतने नियमपूर्वक व्यवहार करनेपरभी, मुझे इस कब्जीके कारण एक वर्षमें छ मास रोगी रूपमें रहना पड़ता था। इस कारण सब कोई मुझे " रोगी घर में रहनेवाला " करके जानता था; मुझेभी यह अपनी अवस्था देखकर बडा दुःख होता था, परन्तु करता क्या!

सब गुरुजन मेरे लिये बडी चिंता रखते थे, और गुरुकुलके डाक्टर साहब मुझे हृष्टपुष्ट करनेके लिये विविध औषधें देते रहते थे, और अपने शास्त्रके अनुसार बहुतही प्रकारके उपाय और इलाज करते थे, परंतु मेरी अवस्था बहुत कुछ अखंड वैसीही रहती थी। यहांके डाक्टर साहब महोदयजीनें जितने प्रयत्न और नयेनये उपाय मेरे लिये किये उतने शायद किसीके लिये भी उनको न करने पडे होंगे ! !

एक वार, मुझे पूरा स्मरण है कि, पूरी तरहसे रोग दूर कर डालनेके लिये विशेषतया मेरा चिकित्सा प्रारंभ हुई । मैं ९ महिने तक चार पाई पर पडा रहा, विविध प्रकारके कटु, तिक्त, अम्ल आदि विविध रसरूपी औषध सेवन करता रहा, और चिकित्सकर्की आज्ञानुसार तोलकर अन्न लेता रहा । परंतु मेरी कब्जीके साथ युद्ध करते करते अंतमें डाक्टर ही पराजित हुए और मेरा रोग जैसाका वैसाही रहा !!! इसको कहना चाहिए रोग, और ऐसेही रोगीको कहना चाहिए रोगी !!!

पश्चात् मुझे लाहोरमें भेजा गया, और वहांके धुरंधर डाक्टरोंका इलाज कराया गया। ऐसे ऐसे बडे बडे डाक्टर लाये गये कि जो प्रतिसमय दस वीस रु० फीज लेनेकी योग्यता रखते थे । उनके प्रिस्क्रिप्शनोंके बडे बडे पुस्तक बन गये । इतनी दवाइयां मेरे पेटनें हजम कर ली और अंतमें सब डाक्टरोंका पराभव करके मेरे बद्ध कोष्ठ (कब्ज) का ही विजय हुवा ! ! !

यह सब देख कर मुझे तथा अन्योंको मेरे जीवनके विषयमें बडीही निराशा हो गयी थी । मेरी कब्जी किसी औषधसे दूर नहीं हो सकती, और इसके साथ ही मेरे शरीरकी समाप्ति होनी है, यह सर्व संमतिसे निश्चय हो चुका । अंतमें बिल्कुल निराशाकी अवस्थामें मेरे पिताजी द्वारा मेरा हमीरपुर लेजाना हुआ । इस समय मेरी शारीरिक दुर्बलता इतनी बढगई थी, कि यह रेलका सफर बडीही कठिनतासे निर्विघ्न पूरा हुआ । खैर ! वहां जानेके पश्चात् एक सिविल सर्जनका इलाज शुरू हुआ । परंतु उससे कोई लाभकी आशा न बधी । इसके पश्चात् एक यूनानी हकीमका औषध शुरू हो गया, इससे बहुत कुछ लाभ प्रतीत हुआ । मैं चारपाईसे ता उठ खडा हुवा, परंतु इनके औषधियोंका प्रभाव शरीरमें देरतक स्थिर न रह सका ।

दस बारह वर्ष इस प्रकार निरंतर औषधियोंके रस पीते पीते मुझे औषधियोंसे सख्त घृणा हो गई थी । अब औषधियोंके विना आरोग्य प्राप्त करनेके साधनों की तरफ मेरा विचार रहने लगा । औषधियोंपरका विश्वास हट जानेके कारण डाक्टरों और वैद्योंके पास जाना मैने बंद किया, और जलचिकीत्सा शुरू की गई । उससे लाभ अवश्य हुआ, किन्तु चिकित्सा छोडनेपर कुछ दिनों बाद फिर वैसी ही अवस्था हो जाती थी । तात्पर्य स्थिर रूपसे लाभ जलचि-कित्सासेभी नहीं हुआ ।

जब इस प्रकार स्थूल चिकित्साओंसे मैं निराश होगया, तब मेरी रुचि योगसाधनकी सूक्ष्म चिकित्सामें बढने लगी । शनैः

शनैः मैंने व्यायामके साथ योगके आसनोंका अभ्यास प्रारंभ किया। शीर्षासन, मत्स्यासन, उष्ट्रासन, गोमुखासन, सर्पासन, मयूरासन आदि विविध प्रकारके आसन प्रतिदिन करने लगा। शीर्षासन तो आधा आधा घंटा तक करने लगा, और समयके अनुसार अन्य आसन भी नियमानुसार करने लगा, शीर्षासन आदिका अच्छा अभ्यास करनेके लिये मुझे दो मासका समय लगा। इतने समयमें जो अनुभव मुझे प्राप्त हुआ वह कुछ आश्चर्यकारक था। जो अन्न पचन होकर ठीक प्रकार साफ शौच कभी कभी आठ दिनोंमें भी नहीं आता था वह आसनोंके अभ्यास शुरू करनेके पश्चात् दो दिनोंमें साफ होकर आने लगा। तथा शौच साफ होना किसको कहते हैं, और शौचशुद्धि होनेके पश्चात् शौचानंद कैसा होता है इस बातका मुझे अनुभव आने लगा!! इन दिनों आसनोंके महत्त्व पर मेरा विश्वास दृढ हो गया।

नियमपूर्वक आसनोंका अभ्यास करनेपर भी प्रतिदिन शौच नहीं होता था। यह त्रुटि भी दूर हो गई, जबसे मैं कुंभक प्राणायाम करने लगा। एक दिन ऐसा हुआ कि, दैनिक आसनोंका अभ्यास करनेके पश्चात् मैं प्राणायाम करने लगा। कुंभक प्राणायामका अभ्यास करते ही शौच होनेका संभव प्रतीत हुआ। आसन खोल कर मैं शौच चला गया। यही पहिला दिन है कि जिस दिन मुझे खुला शौच होनेका आनंद प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् नियमपूर्वक "**आसन और प्राणायाम**" का अभ्यास मैंने किया, और अब भी अपने दैनिक अनुष्ठानमें मैं करता रहता हूं।

उक्तप्रकार "**आसन और प्राणायाम**" के नियमपूर्वक दृढ अभ्याससे अब मुझे प्रतिदिन शौच हो जाता है। अब मैं प्रतिदिन शौच हो आता हूं, और किसी प्रकार भी कब्जकी शिकायत नहीं रही है। जबसे मैंने आसन और प्राणायामका अभ्यास प्रारंभ किया, तबसे मैंने किसी दवाका सेवन नहीं किया, क्यों कि औषधकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई।

शौच खुला और साफ आनेसे अब मैं जानता हूं कि भूख किसे कहते हैं और भूख लगनेसे अन्नका स्वाद कैसा होता है। अब अन्नका पचन भी प्रायः ठीक प्रकार होता है, निद्रा भी पहिलेसे अच्छी आती है, चित्तकी अपूर्व प्रसन्नता रहती है, सिरदर्द और ज्वरका पता भी नहीं रहा है कि वे कहां भाग गये हैं। पहिले मेरा शरीर बड़ा ही कमजोर और मरियलसा रहता था, परंतु अब यह शनैः शनैः अच्छा होने लगा है। देखनेवाले (विशेषतया जिन्होंकि मुझे ३।४ वर्ष बाद देखा है) मेरे चेहरे पर अब सुर्खी आयी हुई देखते हैं। नेत्रमें तेज आता हुवा अनुभव होता है, कार्य करनेका उत्साह प्रतिदिन बढ़ रहा है। मनकी उल्हसित वृत्ति हो गई है, सब जगत् उत्साहसे परिपूर्ण है, ऐसा मुझे अब प्रतीत होने लगा है। मेरे सामने जो निराशाकी छाया सदा रहती थी, वह दूर हो गई है और अब मैं उत्साहके दिव्य प्रकाशमें आगया हूं!!!

जो परिवर्तन विविध डॉक्टरों, हकीमों और वैद्योंके औषध नहीं कर सके वह इष्ट परिवर्तन योग साधनके आसन और प्राणायामके

अनुष्ठानसे मेरे शरीरमें होगया और हो रहा है । अब मेरी मस्तिष्क आदिकी शक्ति बडे उत्साहके साथ कार्य करनेमें समर्थ होगई है, शरीरके सब अवयव भी कार्यक्षम बने हैं और मुझे पूर्ण रीतिसे अनुभव हुआ है कि, योगसाधनसे सब प्रकार की निर्दोषता और नीरोगता प्राप्त हो सकती है।

अब करीब तीन वर्ष हुए हैं कि जबसे मेरा स्वास्थ्य औषधि सेवन के विनाही अति उत्तम रहा है। मेरी अवस्था की अपेक्षासे जिनकी अवस्था अच्छी होगी उनको तो थोडेही समयमें लाभ हो सकता है और बडा आश्चर्यकारक लाभ हो सकता है । तथा जो प्रारंभसेही नीरोग होंगे उनका आरोग्य आसन प्राणायामके अभ्याससे चिरस्थायी हो सकता है। अर्थात् जैसा रोगीको आसन प्राणायामसे लाभ हो सकता है, वैसाही नीरोग भी लाभ प्राप्त कर सकता है ।

ऋषि मुनियोंने यह योग साधनका मार्ग हमारे लिये सुगम कर रखा है । इसमें किसी प्रकारका धोखा नहीं है, किसी प्रकारका भय नहीं है । इस मार्गमें थोडासाभी प्रयत्न किया जायगा तोभी बडा लाभ हो सकता है । इस मार्गपर चलनेसे आत्मशक्तियोंका विकास हो सकता है, जो मेरा अनुभव है उस प्रकारका अनुभव हरएक को प्राप्त हो सकता है । यदि लोग योगाभ्यास करने लगेंगे तो औषधादि विषोंके सेवन करनेमें जो उनके सहस्रों रुपयोंका व्यय हो रहा है, निःसंदेह बच जायगा । और सच्चा स्वास्थ्य प्राप्त होगा ।

आसन और प्राणायामके अभ्याससे मेरे शरीर पर और विशेषतः कोष्ठबद्धता विषयक जो लाभ मुझे हुआ है, वह ऊपर दिया

है। अभ्याससे जो अन्य सुपरिणाम हो रहे हैं व आगे होने-वाले हैं, उन्हें भी ठीक समयपर पाठकोंके लिये प्रकाशित कर-नेमें मैं संकोच नहीं करूंगा किंतु अनुभव पूरा होनेके पश्चात् ही। सांप्रत मुझे अपने अंदर एक बडी अपूर्णताका ज्ञान प्राप्त हुआ है, यद्यपि डाक्टरी दृष्टिसे मुझे अब कोई रोगादिक नहीं है। आजकल मैं इसीके ठीक करनेमें श्रम कर रहा हूं। इसी त्रुटिके कारण जो अन्य बहुतसे स्वास्थ्यके चिन्ह मुझमें प्रकट रूपमें आ जाने चाहिये थे अभी तक प्रकट नहीं हैं। और इसीसे मैं अभी अपना अनुभव प्रकाशित करनेकी इच्छा नहीं करता था, तो भी जितना बिलकुल स्पष्ट ह उतना लिख दिया है। परमात्माने निश्चयसे योगसाधनके आश्चर्य प्रकट करनेके प्रयो-जनसे ही मुझे ऐसा त्रुटिपूर्ण शरीर देकर साथही योगसाधनकी इच्छाभी मुझमें पैदा कर रखी है ॥

ब्रह्मचर्यका वायुमंडल।

(१२)

(१) मतकी धुंद।

कोई बात बनानी हो, तो वह तब बनती है कि, जब उस बातका वायुमंडल तैय्यार होता है, और उसी वायुमंडलमें वह मनुष्य अपने आपको रख देता है। विशिष्ट राजकीय विचारोंका जब देशमें वायुमंडल बनजाता है, तब ही उस देशके पंचजनोंमें उक्त विचार फैलकर विशिष्ट प्रकारकी क्रांति हो जाती है। सामाजिक विचारोंका परिवर्तन भी इसी प्रकार हो जाता है। यही नियम धार्मिक विचारोंके लिये भी है।

इस समय तक जो जो बड़े धर्मप्रवर्तक हुए, तथा मतमतांतरोंके संचालक बने, राजकीय आंदोलनोंके पुरस्कर्ते हो गये, अथवा अन्य बातोंका प्रचार करनेवाले बने; उन सबोंने अपना अपना विशिष्ट प्रकारका ही वायु-मंडल बनाया था, और अपने आपको उसीमें रख कर उन्होंने उसी वायुमंडलसे अपने मतका प्रचार किया। जो धर्मजागृति करनेवाला अथवा अपने विचारोंका प्रचार करनेवाला अपना वायुमंडल नहीं बना सकता, और अपने आपको तथा जनताको उसी वायुमंडलमें नहीं रख सकता, उसका मत

प्रचलित भी नहीं हो सकता। इसका हेतु स्पष्ट ही है। पहाडों-पर भ्रमण करनेवाले कहते हैं, कि कई पहाड़ ऐसे हैं कि जहां भ्रमण करनेसे सिरमें चक्कर आ जाते हैं, दूसरे कई ऐसे पहाड़ हैं कि जहां घूमनेसे चित्त प्रसन्न होता है, और कई ऐसे पहाड़ हैं किं वहां केवल रहने मात्रसे बड़ी भूख लगती है, परंतु कई ऐसे भी पर्वत हैं कि जहां दस दस मीलोंका चक्कर लगाने पर भी भूख नहीं लगती। पाठक पूछेंगे कि इसका क्या कारण है? उक्त सब प्रकारके पहाडोंकी विभिन्न परिस्थितिका कारण एक ही उत्तरसे विदित हो सकता है, वह यह है कि, "उस पहाडका वायुमंडल ही वैसा है।" तात्पर्य जिस प्रकारके वायुमंडलमें मनुष्य रहता है उसी प्रकारका वह बन जाता है।

धार्मिक संस्थाओंका भी यही हाल है। प्रत्येक संघके प्रवर्तक, संचालक और उपदेशक जिस प्रकारका वायुमंडल जनतामें बनाते हैं, उस प्रकारके सभासद उस संस्थाके बनते हैं। किसी समय ऐसा भी होता है कि, धर्म संस्थापकके मतके विरुद्धही मत उस संप्रदायमें प्रचलित होता है; इसका कारण संस्थापक चले जानेके पश्चात् जिन लोगोंके हाथोंमें वह संस्था आजाती है, उनके स्वभावोंके अनुकूल उस संस्थामें वायु-परिवर्तन हो जाता है। यही कारण है कि, अहिंसा प्रचारक बुद्ध धर्ममें सबसे अधिक मास-भक्षक लोग हैं, शांतिके प्रचारक खिस्तीधर्ममें जो राष्ट्र हैं वेही जगत्में अधिक अशांति फैला रहे हैं, अंत्यजोद्धारक रामानुज मतमें सबसे अधिक छूत छात विद्यमान है तथा वैदिक धर्मका

अभिमान रखनेवालोंमें तथा उसका प्रचार करनेवालोंमें भी वेदकी पढ़ाई शून्यरूपही है। तात्पर्य केवल धर्मपर विश्वास रखने अथवा मतका स्वीकार करने मात्रसेही कार्य नहीं हो सकता, परंतु उस धर्मका वायुमंडल बनना चाहिये, उस मतका बना हुआ वायुमंडल शुद्ध रहना चाहिये अर्थात् उसमें प्रचारकोंके दोष नहीं मिलने चाहिये, तथा उसी वायुमंडलका परिपोष करनेका यत्न होना चाहिये, तभी कार्य हो सकता है। जो नियम सर्वसाधारणके लिये है वही ब्रह्मचर्यके लिये भी है।

वैदिक धर्मका विशेष अंग ब्रह्मचर्यही है। वैदिक धर्ममें जितना बल ब्रह्मचर्यके लिये दिया है उतना किसी अन्य धर्ममें नहीं दिया। तथापि अन्य मतावलंबियोंकी अपेक्षा वैदिकधर्ममें रहनेवाले स्त्रीपुरुषोंमें ब्रह्मचर्य अधिक पाला जाता है यह बात नहीं है। ब्रह्मचर्यके अभावके कारण वैदिकधर्मका अभिमान माननेवालोंके अंदर कई कमजोरियां उत्पन्न हो गई हैं। इसका कारण इतनाही है कि, इसमें ब्रह्मचर्यका वह वायु-मंडल नहीं रहा जो प्रारंभमें ऋषिकालमें था।

इस समयमें भी ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिये कई स्थानोंमें प्रयत्न हो रहे हैं। ये सब प्रयत्न निःसंदेह प्रशंसाके योग्य हैं, परंतु आंतरिक अवस्था देखनेसे पता लग जाता है कि कई स्थानोंमें जैसा ब्रह्मचर्यका वायुमंडल बनना चाहिये था वैसा अबतक नहीं बना। नामों, स्थानों और मकानोंसे ही केवल वायुमंडल नहीं बन सकता, संस्थाके सबही संचालकोंके अंदर उसी ब्रह्मचर्यकी " धुंद "

चाहिये। संचालकोंकी ऐसी अवस्था होनी चाहिये कि उनको सर्वत्र वहही ब्रह्मचर्यका भाव दिखाई देना चाहिये।

जिसको बहुत भूख लगती है उसको अन्नके स्वप्न आते हैं, जो राजकीय स्वातंत्र्य चाहता है उसको राजकीय स्वतंत्रताके भाव सर्वत्र दिखाई देते हैं, तथा जिसने ब्रह्मचर्यका प्रचार करना है, उसको सर्वत्र ब्रह्मचर्यही ब्रह्मचर्य दिखाई देना चाहिये, तब जाकर वायुमंडल बन सकता है। इस प्रकारके "ब्रह्मचर्यकी धुंद" चढे हुए संचालकही जिस संस्थामें एक विचारसे कार्य करेंगे, उस संस्थाका वायुमंडल ब्रह्मचर्यसे परिपूर्ण हो जायगा और ऐसेही संस्थासे "**ब्रह्म-चारी**" निकल सकेंगे।

वेद पढनेसे पता लग जाता है कि इस प्रकारकी "**ब्रह्मचर्यकी धुंद**" जनतामें उत्पन्न होना वेदको अभीष्ट है। अथर्ववेदके ब्रह्मचर्य सूक्तमें इस ब्रह्मचर्यकी धुंदका अच्छा वर्णन है। जिसको जो धुंद होगी उसको वही विषय सर्वत्र दिखाई देगा, अर्थात् जिसको ब्रह्मचर्यकी धुंद होगी उसको संपूर्ण जगतमें ब्रह्मचर्यकी ही विभूति दिखाई देगी, वह कहेगा कि "देखो यह मेघ ब्रह्मचारी है, ये वृक्ष भी ब्रह्मचारी हैं और सचमुच ये पशुपक्षी भी ब्रह्मचर्यका पालन कर रहे हैं; अहा हा! इस पृथ्वीसे लेकर आकाश तक सर्वही पदार्थोंमें मुझे ब्रह्मचर्यका भाव दिखाई दे रहा है, सब पदार्थ यदि ब्रह्मचर्यका धारण करके अपनी सत्ताको स्थिर कर रहे हैं, तो मैं भी ब्रह्मचर्यसे वंचित क्यों रहूं, मैं भी अवश्यही ब्रह्मचर्यका पालन करके अपना अभ्युदय करूंगा!" जिसके मनमें

ब्रह्मचर्यकी धुंद इस प्रकार चढेगी वही ब्रह्मचारी बन सकता है, इस लिये उस " वैदिक धुंद " का थोडासा वर्णन यहां करता हूं—

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ॥
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥

अथर्व. ११।७

" औषधियां, वनस्पतियां, संवत्सर, अहोरात्र आर (भूत भव्यं) भूत वर्तमान तथा भविष्य काल ये सब पदार्थ ब्रह्मचारी बने हैं क्यों कि वे (ऋतुभिः सह) ऋतुओंके साथ रहते हैं। "

(२) संवत्सरका ब्रह्मचर्य। प्रजापतिका ब्रह्मचर्य।

वर्षका नाम संवत्सर है और संवत्सरका नाम प्रजापति है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है कि—

द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य, पंचर्तवः,
एष एव प्रजापतिः सप्तदशः, सर्वं वै प्रजापतिः ॥

श. ब्रा. १।३।२।१०

" संवत्सरके बारह मास और पांच ऋतु मिलकर प्रजापति होता है। " संवत्सरका नाम प्रजापति होनेमें क्या हेतु है ? इसका विचार करना चाहिये। वेदके नाम निरर्थक नहीं होते, कोई न कोई विशेष गूढ बात उसमें अवश्य हुआ करती है। इसका पता पाठकोंको यहा लग सकता है। " **प्रजा-पाति** " शब्द प्रजापालनका धर्म बता रहा है। जो अपनी प्रजाओंका यथायोग्य रीतिसे पालन करता है, वह प्रजापति होता है। प्रजाका अर्थ " संतान " समझ-

नेसे प्रजापति शब्द गृहस्थीका भाव बता सकता है तथा "जनता" अर्थ लेनेसे उसीका अर्थ राजा होता है। दोनों स्थानोंमें तात्पर्य एक ही है। वेही मातापिता प्रजा-पति कहनेके योग्य बनेंगे कि जो अपने संतानोंका परिपालन, ऋतुओंके परिवर्तनके अनुसार अन्नादि देकर, करते हैं और इस प्रकार संतानोंकी पुष्टि करनेमें तत्पर होते हैं। इसी प्रकार वही राजा प्रजा-पति कहलाने योग्य होगा कि, जो अपनी प्रजाका परिपालन ऋतुओंके अनुसार धान्यादिककी वृद्धि कराके करता है। संवत्सर अर्थात् वर्षभी ऋतुओंके अनुसार फल फूल आदि देकर सब प्राणिमात्रका संरक्षण करता है, इस कारण संवत्सर प्रजापति है और वह ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार करता है।

"ऋतुके अनुसार व्यवहार करनेका धर्म" जैसा एक गृहस्थीमें है, वैसाही संवत्सरमें भी है। अथवा यों कहिये कि जैसा "ऋतु—गामी" होनेका धर्म संवत्सरमें है, वैसाही गृहस्थीमें भी "ऋतु—गामी" होनेका धर्म अवश्य होना चाहिये।

संवत्सर भी ऋतुओंके साथ साथ चलता है, वसंत ऋतुमें वनविहार करता है, ग्रीष्म ऋतुमें तपस्या करता है, वर्षाऋतुमें वीर्य (जल) प्रदान करता है, इसीप्रकार अन्य ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार करता है। प्रत्येक वर्षके तप करनेके और वीर्य प्रदान करनेके, तथा फलने फूलनेके ऋतु निश्चित होते हैं। जिस ऋतुमें जो करना योग्य होता है उस ऋतुमें वह ही करता है। इस प्रकार संवत्सर ऋतुगामी होनेके कारण, ऋतुओंके सब व्यवहार करता हुआ भी, ब्रह्मचारी ही है। अर्थात् इसका व्यवहार देखनेसे यह शिक्षा मिलती

है कि, जो " ऋतु-गामी " होगा वह गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी ब्रम्हचारी हो सकता है। वर्षमें संवत्सरका एकही वर्षाऋतु है कि जिसमें वह सब भूमिको वीर्य (रेतः=जल) प्रदान करता है, अन्य ऋतुओंमें वह व्रतीही रहता है, इसी प्रकार गृहस्थीको भी वर्षमें एकही ऋतुमें गमन करना योग्य है और अन्य ऋतु तप और व्रतके लिये रखने उचित हैं। संवत्सर जैसा ऋतुगामी है वैसा जो होगा वह ब्रम्हचारी रह सकता है।

प्रिय पाठको ! देखिये किस दिव्य दृष्टिसे वेदनें संवत्सर अर्थात् वर्षके ऋतुओंके साथ होनेसे किस प्रकार ब्रम्हचर्यका उपदेश दिया है। जिसको ब्रम्हचर्यकी धुंद होगी वह इसी प्रकार सर्वत्र ब्रह्मचर्य ही देखेगा। जो पाठक इस रीतिसे परिचित होकर सर्वत्र ब्रम्हचर्य देखने लगेंगे वे निःसंदेह ब्रम्हचारी बन सकेंगे।

(३) वृक्षोंका ब्रह्मचर्य।

पूर्वोक्त मंत्रमें ही कहा है कि, " औषधिवनस्पातिया अर्थात् वृक्षादिक भी ब्रम्हचारी ही बने हैं। " वेद इस मंत्र द्वारा और एक दृष्टि दे रहा है, देखिये वेद किस रीतिसे बोध देता है।

वृक्ष ब्रम्हचारी हैं, और औषधियां तथा वनस्पतियां ब्रम्हचारिणी हैं, अर्थात् जन्मसे ही इनका ब्रम्हचर्य है। अब इस ब्रम्हचर्यकी कल्पना देखिये। इनके साथ भी ऋतुगामित्वका संबंध ही है। अपने ऋतुमें ही ये आगमन करते हैं। मंत्रमें " औषधि और वनस्पति " ये दो ही शब्द हैं, वृक्ष शब्द हमने यहां रखा

है। औषधि वनस्पतियोंका विशिष्ट ऋतुमें ही होना, खास ऋतुमें उनका " पुष्पवती " होना और निश्चयपूर्वक विशेष ऋतुमें फलवती होना सुप्रसिद्ध हीं है। स्त्रियोंके विषयमें " ऋतुमती " होनेके लिये " स्त्री पुष्पवती हो गई है " ऐसा भी कहते हैं। स्त्री भी एक लता अथवा वल्ली है, वह ऋतुकालमें " पुष्पवती " होती है, और पुष्पवती होनेके पश्चात् फलवती अर्थात् पुत्रवती होती है। फलधारणा, गर्भधारणा, पुत्रयुक्त होना आदिका संबंध पुष्पवती होनेसे कितना है, इस बातका यहां पता लग सकता है। इसी लिये ऋतुकालमें ही केवल गमन होना चाहिये अन्य समय नहीं। ऋतुकालमें पुष्पवती होनेका धर्म वनस्पतियोंमें है, वही स्त्रियोंका धर्म है। जो स्त्रियां इस प्रकार ऋतुगामी होतीं हैं वह स्त्रियां ब्रह्मचारिणी हैं।

जो बात वनस्पतियों और औषधियोंमें है वही बात वृक्षोंमेंभी है। इसी कारण वृक्ष पदका वहां अध्याहार किया था। वृक्षभी ऋतुके अनुसार ही कार्य करके फलवान् और पुत्रवान् बनते हैं। वृक्ष वनस्पति आदिकोंके फूलोंमें स्त्री केसर और पुंकेसर होते हैं। और वहां स्त्रीपुरुष संबंधसेही फलकी उत्पत्ति होती है। इनका परस्पर स्त्रीपुरुष संबंध योग्य ऋतुकालमेंही होनेके कारण फलका प्रादुर्भाव भी योग्य रीतिसे होता है। इस प्रकार ये सब वृक्ष ऋतुगामी होनेका उपदेश अपने प्रत्यक्ष व्यवहारसे मनुष्योंको दे रहे हैं। अर्थात् ऋतुगामी होनेसे इनका ब्रह्मचर्य है।

मेघ	ब्रह्मचारी
(१) गर्जना करना ।	(१) बडी आवाजसे उपदेश देना ।
(२) भूरे और काले रंगसे युक्त होना ।	(२) गन्नमी अथवा निमगोरा तेजस्वी वर्ण धारण करना।
(३) बहुतजल धारण करना	(३) बहुतवीर्य धारण करना ।
(४) जलका ऊपर आकर्षण करना ।	(४) वीर्यको ऊपर ले जाना, ऊर्ध्वरेता बनना ।
(५) प्राणिमात्रको जीवन रूप जल देना ।	(५) सबको नव-जीवन रूप चेतना देना ।

ब्रह्मचारीमें और मेघमें उक्त गुणोंकी समानता है । पाठक इसका अधिक विचार करें । इस प्रकार गुणोंकी समता देखनेसे वेदकी दृष्टि प्राप्त हो सकती है । वेदमें जो काठिनता है वह शब्दार्थ की कठिनता नही है, । परंतु वैदिक दृष्टिसे वेदका आशय जाननेकी ही कठिनता है, इसी कारण पाठकोंको उचित है कि वे जहां जहां वैदिक रीतिकी विशेषता दिखाई देगी, वहां विशेष गंभीर भावके साथ सोच विचार करके उस भावको अपनानेका यत्न करें । ऐसा करनेसे कुछ समयके पश्चात् वैदिक दृष्टि स्वयं उनके अंदर विकसित हो सकती है । अस्तु ।

यहां मेघके ब्रह्मचर्यका वर्णन हुआ । मेघ ब्रह्मचारी है और ऊर्ध्व रेता भी है । अपने वर्षाऋतुमें ही अपना वीर्यरूप जल भूमिपर छोड देता है, इस कारण ऋतुके अनुरूप कार्य करनेके कारण यह मेघ " ऋतु-गामी " भी है । इसप्रकार मेघमें ब्रह्मचारी,

ऊर्ध्वरेता, ऋतु गामी आदि शब्द सार्थ हुए, ये शब्द ब्रह्मचारीमें सार्थ होते ही हैं। समय समय पर मेघ तप भी करता है, विशेषतः वृष्टिके पूर्व मेघका तप होता है। जब मेघ आते हैं और वृष्टि नहीं होती, उस समय बड़ी ही उष्णता होती है जिससे सारे संसारको कष्ट होते हैं। इतना इसके तप का बडा भारी प्रभाव होता है। इस रीतिसे वृष्टिके पूर्व तपका समय होता है। वृष्टि वीर्यप्रदानकी सूचना देती है और वीर्य प्रदान गृहस्थीका धर्म है; इसलिये गृहस्थी बननेके पूर्व ब्रह्मचर्यका तप करना आवश्यक होता है। इसप्रकार विचार की दृष्टिसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातके गुणसाम्यका विचार करना चाहिये।

(५) सूर्यका ब्रह्मचर्य।

उक्त दृष्टिसे सूर्य भी ऊर्ध्व-रेता है क्यों कि वह रेतः अर्थात् जलको ऊपर खींचता है। सूर्यके किरणोंसे जल ऊपर खींचा जाता है और उससे मेघ बनते हैं यह बात वैदिक वाङ्मयमें सुप्रसिद्ध ही है। किरणोंको वेदमें नाड़ियां भी कहा है। अर्थात् सूर्य अपनी नाडियोंसे जलको ऊपर खींचता है। ब्रह्मचारी भी वीर्यको अपनी नस नाडियोंसे ही ऊपर खींचता है, यह गुणसाम्य सूर्यमें और ब्रह्मचारीमें है। इसी कारण विशेषसे श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले ब्रह्मचारीको " आदित्य ब्रह्मचारी " कहते हैं। अस्तु, इसी प्रकार वायु आदिकोंका ब्रह्मचर्य ज्ञात हो सकता है। अब और देखिये—

(६) पशुपक्षियोंका ब्रह्मचर्य।

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ॥
अपक्षा पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥

अ. ११।५।२१

" (पार्थिवाः पशवः) पृथिवी पर जो पशु हैं, जो अरण्य और ग्राममें होते हैं, तथा जिनको (अ-पक्षाः) पंख नहीं होते हैं, ये सब, तथा (दिव्याः पक्षिणः) आकाशमें संचार करनेवाले जो पक्षी हैं, वे सब ब्रह्मचारी ही बने हैं । "

इस मंत्रमें पशुपाक्षियोंके ब्रह्मचर्यका वर्णन किया है । प्रायः सबही पशुपक्षी जन्मसे ब्रह्मचारी हैं यह मंत्रका तात्पर्य है । सिंह व्याघ्र आदि पशु एकपत्नीव्रतका उत्तम रीतिसे परिपालन करते हैं, कई पक्षी ऐसे हैं कि जो एकपत्नीव्रतसे रहते हैं, और पत्नी मर जानेके पश्चात् पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहते हैं ! ! अन्य पशु पक्षी यद्यपि एकपत्नीव्रतसे नहीं रहते, तथापि ऋतुगामी अवश्य होते हैं । अ-मोघ-वीर्य होनेकी सिद्धि उनको प्रायः होती है । अमोघ वीर्यका तात्पर्य वीर्य व्यर्थ न जाना है । प्रायः सबही पशुपाक्षियोंमें यह सिद्धि होती है । तात्पर्य जो सिद्धि प्राप्त करनेके लिये मनुष्योंको योगादि साधनोंका आश्रय करना पडता है, वह सिद्धि पशुपाक्षियोंको जन्मतः है । इसका कारण ढूंढना चाहिये । इसका कारण यह है कि उनमें मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक ब्रह्मचर्य है । मनुष्योंकी अपेक्षासे उनमें स्त्री पुरुष संबंध बहुधा कम है । ब्रह्म-चर्यके अभावके कारणही मनुष्योंको अधिक कष्ट भोगने पडते हैं तथा ब्रह्मचर्यके कारणही पशुओंमें आरोग्य आदि अधिक है ।

पशुओंका यह ब्रह्मचर्यका भाव देखकर मनुष्य बहुतही बोध ले सकते हैं । जो तपके मार्गमें प्रवृत्त होता है वह शीत उष्ण सहन करता है, कंद मूल फल खाता है, थोडे कपडे पहनता है, वृक्षके नीचे बैठता है, स्त्रीसंबंध कम कर देता है, इत्यादि बहुतसे व्यवहार

पशुओंमें सहज वृत्तिसे हैं । पशुभी सर्दीगर्मी सहन करते हैं पत्ते और घास खाते हैं, खुले शरीरसे रहते हैं, कपडे नहीं पहनते, स्त्रीपुरुष संबंध कम करते हैं । यह साम्य है पशुमें और ब्रह्मचारीमें । यहां पाठक पूछेंगे कि क्या वैदिक धर्म और योगमार्ग मनुष्योंको पशु बनाना चाहता है ? उत्तरमें कहा जा सकता है कि नहीं । परंतु वैदिक धर्म यह बताता है कि, पशु आदिकोंमें जो श्रेष्ठता है, जो अच्छे गुणधर्म हैं उनको अपनेमें धारण करो, तथा हीनसेभी अच्छे उपदेश लेओ । इस घमंडमें न रहो कि मनुष्य योनि पशु पक्षियों और वृक्षवनस्पतियोंसे श्रेष्ठ है, परंतु उन निचली योनियोंमें भी कितने दिव्य गुण धर्म हैं, इसका विचार करो और उन शुभ गुणोंको अपने अंदर धारण करो। वह जन्मकी श्रेष्ठता क्या काम की है, जबतक सद्गुणोंकी श्रेष्ठता न होगी ? हरएकको चाहिये कि वह अपनेमें शुभ गुणधर्मोंका विकास करनेका यत्न करे और अपने दोषोंको दूर करे ।

जहां जो जो शुभगुण होंगे उनको वहां देखना और उनको अपने अंदर बढाना यह वैदिक धर्मकी शिक्षा है । परंतु आजकल ऐसी प्रणाली चली है कि जिससे शुभगुण देखने और लेनेका भावही दूर होगया है और सर्व साधारणतया खंडनकीही प्रवृत्ति बढ गई है । इस केवल खंडनकी प्रवृत्तिसे अन्योंके दुर्गुण देखनेका भाव ही बढता जाता है । जैसे ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाले पादरीलोग दूसरे धर्मोंके सत्यतत्वोंको भी देखने और स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं होते, परंतु अपने धर्म प्रचारके मदसे दूसरोंके सत्यतत्वोंको भी परि-

वर्तित करके खंडनही करते रहते हैं; यदि हम वैदिक धर्मी लोग उन पादरियोंकी रीतिमें सुधारणा न करते हुए उनके समानही बनेंगे तो हमारी श्रेष्ठता कहां रही ? हम भी तो वैसे ही बन गये ! खंडनके लिये भी उनका अनुकरण करना हमको उचित नहीं है। उनकी रीति अत्यंत तिरस्करणीय है। सत्य धर्मके प्रचारके लिये उनका अनुकरण करना ठीक नहीं है। उनकी रीतिमें बडा दोष यह है कि, शुभगुण देखनेकी भावनाही हट जाती है और सर्वत्र दोष देखनेका दुष्ट स्वभाव बन जाता है। जो धर्म प्रचारक तार्किक रीतिसे खंडन करनेमें कुशल समझे जाते हैं, उनके मस्तिष्ककी अवस्था ऐसी विकृत बन जाती है कि, उनको अपने मतसे भिन्न किसी मतमें भी सत्यके अंशकी सत्ता दिखती ही नहीं। परदोषकी राईका पहाड़ बनाने और स्वकीय दोषके पर्वतको न देखनेकी प्रवृत्ति सत्यधर्मकी दृष्टिसे अत्यंत घातक है। जहां यह बात होगी वहां सत्यधर्म रह नहीं सकता, क्योंकि " **आत्मसंशोधन ही सत्यधर्मका मूल आधार है,** " और आत्मसंशोधनके लिये स्वकीयदोषोंको दोष समझकर दूर करना और परकीय गुणोंकी ओर प्रेमदृष्टिसे देखकर उनको भी पास करना, तात्पर्य अपनेमें शुभगुणोंका संवर्धन करना, आवश्यक है। पाठक यहां देख सकते हैं कि मूल वैदिक धर्मसे हम कितने गिर गये हैं।

वैदिक दृष्टिसे ब्रह्मचर्यका शुभगुण पशुपक्षियोंमें, वृक्षवनस्पतियोंमें, तथा सूर्यादिकोंमें भी विद्यमान है, यह बात हमनें इस लेखमें देखी है। जिस प्रकार सृष्टिके इन पदार्थोंसे हम ब्रह्मचर्यकी शिक्षा

ले सकते हैं, उसी प्रकार अन्य शुभगुणोंको सृष्टिमें देख कर हम अपने अंदर बढा सकते हैं। यह सर्व साधारण वैदिक रीति है। प्रस्तुत लेखमें ब्रह्मचर्यके वायुमंडलका विशेषतः विचार करना है। वेदकी दृष्टिसे ब्रह्मचर्यका वायुमंडल सर्वत्र कैसा देखा जा सकता है, इसका ज्ञान पाठकोंको इस लेखसे हुआ ही होगा। वैदिक कालका ब्रह्मचारी अपनेमें ब्रह्मचर्य धारण करनेका यत्न करता है और साथ साथ वृक्षवनस्पतियों, पशुपक्षियों, सूर्यचंद्रादिकोंमें भी ब्रह्मचर्य होनेका अनुभव करता है, तात्पर्य उसको छोटे तिनकेसे लेकर महान सूर्य तक सर्वत्र ब्रह्मचर्यही ब्रह्मचर्य दिखाई देता है ! ! वह समझता है कि सृष्टिके संपूर्ण पदार्थ ब्रह्मचर्यका स्वयं पालन करके मुझे ब्रह्मचर्यके पालनका उपदेश कर रहे हैं। इस प्रकार वह ब्रह्म-चर्यसे भरे हुए वायुमेंही निरंतर श्वासोच्छ्वास करनेके कारण उसकी भावनाही ब्रह्मचर्यके भावसे परिपूर्ण बन जाती है ! ! !

इसी सूक्तमें आगे जाकर कहा है कि " राष्ट्रमें अध्यापक वर्ग भी ब्रह्मचर्यसे युक्त होने चाहिये, तथा क्षत्रिय वर्ग भी ब्रह्मचारी ही होने चाहिये। राजा अपने शासन प्रबंधके द्वारा सब लोगोंसे ब्रह्म-चर्यका पालन कराके सब राष्ट्र की रक्षा करता है। " जब किसी राष्ट्रमें अथवा किसी जातिमें और जनतामें इस प्रकार ब्रह्मचर्यकी धुंद होगी, तो वहां हरएक का ब्रह्मचर्य पालन होनेमें कोई कठिनता नहीं होगी। आजकल ऐसा वायुमंडलही नहीं है, न किसी जातिमें इस प्रकार ब्रह्मचर्यकी धुंद है; इस कारण इस समय ब्रह्मचर्य पालन होनेमें बडी कठिनता हो रही है। सर्वत्र ब्रह्मचर्यके घातक भाव बढ

रहे हैं। नाना प्रकारके दुष्ट दुर्व्यसन बढ रहे हैं, चाय काफी, सिगरेट, मद्य आदि घातक पान सभ्य समाजोंमें चल पडे हैं, भोग की वृत्ति बढ रही है, त्यागका भाव न्यून हो रहा है। ईर्ष्याद्वेष बढ रहे हैं और संयम कम हो रहा है। संपूर्ण जगत्में शांतिके विचार कम होते जाते हैं और परस्पर स्पर्धाके विचार तथा दूसरोंको गिरानेके भाव फैल रहे हैं। यह आजकल की वस्तुस्थिति है। इसलिये धर्मके प्रचारकों को अधिक उत्साहसे कार्य करनेकी जरूरत है और सर्वत्र वैदिक दृष्टिका उदय कराके, न केवल ब्रह्मचर्यके वायुमंडल को ही बनाना चाहिये, प्रत्युत वैदिक धर्मके अन्य सद्भावोंका भी ऐसा फैलाना चाहिये कि, जिससे उनका भी वायुमंडल सर्वत्र दिखाई देवे।

वैदिक धर्मके प्रेमियो! यह कार्य आपका है। कई लोग आपको उत्साहित करेंगे और फुरसतके समयमें प्रचार करनेके कार्यमें आपको लगायेंगे। परंतु आप स्मरण रखिये कि वैदिक धर्मके प्रचार में यदि किसीसे रुकावट होनी है तो इससे होगी। केवल व्याख्यानोंसे जिसका प्रचार होना है वह वैदिक धर्म नहीं है। वैदिक धर्म अपने आचरणमें लाइये, आपकी मूर्ति ही वैदिक धर्मसे परिपूर्ण कीजिये, वेदके मंत्रोंकी सच्चाई योगादि साधनोंसे स्वयं देखिये, और आपके चारों ओर वैदिक धर्मका वायुमंडल बनाइये। फिर आपके हरएक श्वासोच्छ्वाससे वैदिक धर्मका प्रचार होता जायगा। इस सबके लिये सबसे प्रथम आपको ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। इस लेखमें बताई रीतिसे आप ब्रह्मचर्यके वायुमंडलमें रहिये और ब्रह्मचर्यसे अमर बननेके मार्ग का आचरण कीजिये।

योगके मुख्य साधन ।
" प्राणायाम और प्रत्याहार । "

(लेखक—श्री. परशुराम हरि थत्ते, नासिक.)

(१३)

"मनकी स्थिरता होनेसे प्राणकी स्थिरता होती है, प्राण और मनकी स्थिरता होनेसे वीर्य स्थिर होता है, वीर्यकी स्थिरतासे देहमें बल बढता है और जिवित भी सुरक्षित होता है" यह प्राचीन "**आर्योंकी जीवन विद्या**" थी । यह सब होनेके लिये प्राणायामकी अत्यंत आवश्यकता है, इसलिये जीवनकी सुरक्षितताके लिये प्राणायाम की आवश्यकता निःसंदेह सिद्ध हुई । आज कल अपमृत्युका प्रमाण बढ रहा है, इस के लिये जो हेतु है, वह उक्त रीतिके अनुसार हमारा आचरण नहीं हो रहा, यही केवल है । इसका विचार पाठक अवश्य करें, और यथासंभव प्राणायामका अनुष्ठान करें ।

मनुष्यका जीवित वीर्य (शुक्र) पर अवलंबित है, वह शुक्र मनके ऊपर है, इस लिये मनकी सुरक्षितताके साथ वीर्यकी सुरक्षितता करनी अत्यंत अवश्यक है । "**प्राणस्थैर्य, मनस्थैर्य और शुक्रस्थैर्य**" यह क्रम सदा ध्यानम रखना चाहिये । इस प्रकार प्राणायामका अत्यंत महत्व है । प्राणायामका अर्थ केवल

श्वासकाही निरोध नहीं है, प्रत्युत जिस जीवन शक्तिके कारण फेफडोंको गति मिलती है, उस शक्तिका नियमन करना है। इस लिये जितना जितना प्राणका नियमन होता जायगा, उतना उतना शरीरके संपूर्ण स्नायुओंपर हमारा अधिकार जमता जायगा।

जीवात्माकी शक्ति देहपर आकर कार्य करने लगती है, उस समय देहाकाशसे प्राणकी उत्पत्ति होती है। यही प्राण श्वास और उच्छ्वास रूपमें हमें दिखाई देता है। इस प्राणका आयाम करना अर्थात् उसकी मर्यादाका विस्तार करना प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम क्रियामें प्राण और अपानका संयोग होता है, और प्राणायामसे प्राण और अपानकी शक्ति बढती है; इसलिये याज्ञ-वल्क्यादिकोंने प्राणायामका लक्षण प्राणापान संयोग ही किया है। (१) प्राण बाहेरसे अंदर जाता है, यह उसकी " आंतरिक गति " है (२) पश्चात् अंदरसे बाहिर आता है, यह उसकी " बाह्यगति " है। यही क्रमशः श्वास और उच्छ्वास हैं। उच्छ्वासको प्रश्वासभी कहते हैं। इन दोनों गतियोंसे यह प्राण देहका संचालन कर रहा है। इस लिये प्राणनिरोधसे अपनी संचालक शक्तिकी स्वाधीनता होती है। यह हमारा प्राण विश्व-व्यापक संचालक शक्तिका एक अंश है, इस भावनासे प्राणा-यामका अभ्यास होना उचित है।

प्राणायाममें तीन भाग होते हैं। पुरक, कंभक, रेचक। ना-सिका द्वारा प्राणको अंदर लेनेका नाम पूरक है। उसको अंदर

रखनेका नाम कुंभक और पश्चात् नाकके द्वारा बाहिर छोडनेका नाम रेचक होता है। कई विशेष प्राणायामोंमें पूरक और रेचक मुखके द्वारा भी होते हैं परंतु सर्वसाधारण प्राणायामोंमें नासिका काही उपयोग करना योग्य है। पूर्वोक्त तीन भागोंसे जो प्राणायाम बनता है उसके क्रमभेदसे कई प्रकारके प्राणायाम सिद्ध होते हैं। (१) "पहिला **केवल कुंभक**" है। रेचक पूरक न करते हुए श्वासोच्छ्वास की गतिका निरोध करना केवल कुंभक कहलाता है। (२) दूसरा "**मध्य कुंभक**" है। पूरक करनेके पश्चात् यथाशक्ति कुंभक करके तदनंतर रेचक करनेसे यह प्राणायाम सिद्ध होता है। (३) तीसरा "**अंत्य कुंभक**" है। पूरक करनेके पश्चात् रेचक करना और नंतर बाहेर हि प्राणको स्थिर करनेका नाम अंत्य कुंभक होता है। इसीके बाह्य कुंभक कहते हैं। (४) चौथा "**अकुंभक**" है। इसमें केवल पूरक और रेचक ही होते हैं, कुंभक नहीं होता है।

इनमें "**केवल कुंभक**" सबसे श्रेष्ठ है, उसकी सहायताके लिये अन्य प्राणायाम हैं। दीर्घकालपर्यंत केवल--कुंभक प्राणायाम सिद्ध होनेसे बडे लाभ होते हैं। स्थान और कालके भेदसे प्राणायाममें अनेक भेद होते हैं। कालका भेद यही है कि, पूरक कुंभक रेचक में समयकी न्यूनता अथवा अधिकता होना। स्थानका भेद यह है कि अपने शरीरके अभीष्ट अवयवमें प्राण लेजानेकी शक्ति प्राप्त करके वहां प्राणसे इष्टकार्य करनेकी इच्छाशक्ति बढाना। इसको "**दैशिक प्राणायाम**" कहते हैं।

प्राणायामके अभ्याससे प्रकाशके आवरणका नाश होता है। अर्थात् मनका तेज फैलने लगता है, ध्यानधारणा करनेकी योग्यता मनमें बढ जाती है। इस प्रकार प्राणकी शक्ति बढनेसे साथसाथ मनकी भी शक्ति बढ जाती है। तात्पर्य प्राणायामसे जिस प्रकार शारीरिक आरोग्य बढता है, इंद्रियोंकी शक्ति विकसित होती ह, उसीप्रकार मनका बल वृद्धिंगत होजाता है।

प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये एक शुद्ध स्थान निश्चित करना उचित है। वहां निम्नप्रकार आसन तैयार करके उसपर योग्य आसन लगाकर बैठना। नीचे लकडीका पट्टा अथवा दर्भका आसन हो, उसपर ऊनका आसन, पश्चात् उसपर कृष्णाजिन रखकर उसपर सूती वस्त्रका कपडा रखा जावे। आसन बडा ऊंचा न हो और नीचाभी न हो। परंतु बैठनेके लिये नरम और सुख देने-वाला हो।

उस सुखासनपर बैठकर जहांतक होसके वहांतक मनको एकाग्र और शांत करके तथा इंद्रियोंकी गतिका निरोध करके किसी एक विषयमें सब चित्त अर्पण करना। पीठ और गर्दन समरेखामें सीधी रखकर नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमादेनी और अंतःकरणकी शुद्धि करनेकी इच्छासे स्थिर बैठजाना। इस समय ऐसी भावना करनी चाहिये कि मैं ब्रह्ममें लीन हो रहा हूं। अथवा ब्रह्मकी एक नौका है उसमें मैं बैठा हूं और संसार सागरके पार हो रहा हूं।

पृष्ठवंशकी की रीढमें दोनों ओर इडा और पिंगला ये दो प्रवाह हैं और उनके बीचमें सुषुम्ना नामक एक प्रवाह है। पृष्ठवंशके

मूल स्थानमें गुदाके ऊपर मूलाधारचक्र है, वहां कुंडलिनी शक्ति रहती है। यही आधार शक्ति अर्थात् मूलशक्ति है। इडाकी देवता चंद्र, पिंगलाकी सूर्य और सुषुम्नाकी शिव है। इसलिये क्रमशः उनको चंद्रनाडी, सूर्यनाडी और शिवनाडी कहते हैं। जैसा कुंडलिनी शक्तिका स्थान मूलाधारचक्र है, उसी प्रकार शिवका स्थान मस्तक सहस्त्रारचक्र है। इन दोनोंका संबंध प्राणायामसे होता है। यह शिवशक्तिका संयोग अपूर्व फल देनेवाला है।

प्राणायाम ठीक प्रकार होनेके लिये तीन बंध करने आवश्यक हैं। मूलबंध, उड्डियान बंध और जालंधरबंध। (१) **मूलबंध**—पूरक करनेके समय करना चाहिये। गुदा और शिस्नके बीचमें जो चार अंगुलका स्थान है। उस स्थानमें एडीका दबाव रखकर गुदाका आकुंचन करके अपानवायुको ऊपर खींचनेसे मूलबंध सिद्ध होता है। इसमे अपानका प्राणसे संयोग होता है, मलमूत्र अल्प होता है। और वीर्यका रक्षण होता है। इसलिये इसका योग्य अभ्यास करनेवाला पुरुष वृद्ध अवस्थामें भी तरुण दिखाई देता है। (२) **उड्डियान बंध**—यह बंध रेचक के समय करना होता है। संपूर्ण पेटको अंदर खींचना और उसको जहांतक हो सके वहां तक पीठकी तर्फ लेजानेसे यह बंध सिद्ध होता है। यह सुगम है तथा बडा लाभदायी है। क्षुधा प्रदीप्त होनेसे यह मृत्युको दूर करनेवाला है। (३) **जालंधर बंध**—कंठको सिकोड कर हनुको कंठमूलमें हृदयके ऊपर लगानेसे यह बंध सिद्ध होता है। इसीको कंठबंधभी कहते हैं। इसका छः मास तक योग्य रीतिसे अनुष्ठान करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है।

पूरकके समय मूलबंध करनेसे अपानकी ऊर्ध्वगति होती है, कुंभकके समय जलंधर बंध करनेसे प्राणकी निम्नगति होती है। इस प्रकार अपान और प्राणका मध्यमें संयोग होकर उष्णता बढती है, जठराग्नि प्रदीप्त होता है। इस उष्णताके बढ जानेसे कुंडलिनीकी जागृति होती है। वह शक्ति जागृत होनेके पश्चात् सुषुम्ना नाडीके द्वारा ऊपर चढने लगती है और सहस्त्रारचक्रमें पहुंचकर शिवके साथ संयुक्त होती है। यही स्वानंदसाम्राज्य है। प्राणायामक दृढ अभ्याससे इसकी सिद्धि होती है।

एक नासिकासे पूरक करनेपर दूसरी नासिकासे रेचक करना चाहिय। पश्चात् जिसमे रेचक किया होगा उसीसे पूरक करके पहिलीसे रेचक करना योग्य है। इसीप्रकार दायीं और बाईं नासिकासे यथाक्रम श्वासोच्छ्वास करनेका अभ्यास बढानेसे शनैः शनैः योग्य प्राणायाम होने लगता है। पूरकको जितना समय लगता है उससे चार गुणा कुंभक और दो गुणा रेचक करना चाहिये। अर्थात् छः निमेषमें पूरक हुआ होगा, तो चोवीस निमेष कुंभक के लिये और बारह निमेष रेचक के लिये समय लेना चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार ही यह समय न्यूनाधिक रखना चाहिये। शक्तिसे अधिक करनेसे बडी हानी है। इसमें यह सावधानी रखनी चाहिये कि पूरक कुंभक तथा रेचक में किसी समय धक्का न लगे, सरल गतिसे ही प्राणका आना और जाना होता रहे। शक्तिसे अधिक करनेसे धक्के उत्पन्न होते हैं। उनसे शक्तिकी क्षीणता होती है।

जिस प्रकार शुद्ध जलके स्नानसे शरीरका बाह्य भाग निर्मल होता है उसी प्रकार योग्य प्राणायामसे अंदरकी निर्मलता होती

है। पूर्वोक्त रीतिसे अपान और प्राणका संयोग करनेके अभ्याससे जठराग्नि प्रदीप्त होता है और अपचनका कोई दोष नहीं होता। अग्नि प्रदीप्त होता है, परंतु ध्यानमें रहे कि अधिक प्रमाणमें भोजन करनेसे हानी ही होगी, इस लिये मिताहारसे ही योग सफल होता है, यह बात कभी भूलना नहीं चाहिये। प्राणायामसे इंद्रियां निर्दोष होतीं हैं और अपना अपना कार्य करनेमें अधिक समर्थ होतीं हैं। शरीरमें जो भारीपन उत्पन्न होता है वह प्राणायामके अभ्याससे दूर होता है। भारीपन बीमारीका लक्षण और हलकापन आरोग्यका लक्षण है। बैठकर कार्य करनेवालोंके पेट बडे होते हैं। पेट बडा होना मृत्युको पास बुलानाही है। प्राणायाम के अभ्याससे पेट ठीक हो जाता है, अत एव उत्तम आरोग्य प्राप्त होता ह। इस प्रकार प्राणायामसे अनेक लाभ हैं।

अन्य संपूर्ण शक्तियोंमें प्राणकी शक्ति सबसे श्रेष्ठ है। जब यह प्राणशक्ति स्वाधीन होगी तब उसके स्वाधीन होनेसे अन्य शक्तियां इसको सहज प्राप्त हो सकती हैं। यही प्राणायामके पूर्णत्वकी कल्पना है। मुख्य शक्तिको स्वाधीन रखनेका यहां यत्न होता है। इसीलिये सावधानीसे अभ्यास होना चाहिये। क्योंकि अयोग्य रीतिसे प्राणके साथ बर्ताव करनेसे बडे कष्ट हो सकते हैं।

प्राणका निरोध करनेसे आपका मन आपके आधीन होगा। जिस प्रकार दूधमें जल मिला होता है, उसी प्रकार प्राण और मन एक दूसरेके साथ मिले हुए हैं। इसलिये प्राणकी स्वाधीनता होनेसे मनभी स्वाधीन होता है। मन स्वाधीन होनेसे इंद्रियोंसमेत शरीर स्वाधीन होता है और इंद्रियोंकी स्वैर प्रवृत्ति दूर हो जाती है।

आपका मन जिस तत्वका बना है उसी तत्वका सब लोगोंका मन बना है, इसलिये जब आपका मन स्वाधीन होता है तब वही शक्ति बढनेसे अन्योंके मनोंको वश करनेकी और उसके द्वारा उनके शरीर वश करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकारकी शक्ति जिनको प्राप्त होती है, उनको बहुत लोग अनुकूल होते हैं और वही इच्छा शक्तिके चमत्कार करते हैं। इस प्रकार अनुभव होनेसे मनकी अगाध शक्तिका पता लगता है तथा मनकी अखंड उन्नतिकाभी मार्ग विदित होता है। इस प्रकार प्राणायामके अभ्याससे अनेक लाभ होता हैं। अब क्रम प्राप्त प्रत्याहारका विचार करेंगे।

अपने अपने विषयोंसे इंद्रियोंको निवृत्त कर उनको चित्तमें स्थिर करनेका नाम प्रत्याहार है। बाह्य विषयोंसे अपने इंद्रियोंका संबंध होता है। मानो विषयोंसे जो किरण आते हैं, वे इंद्रियोंके सुराखोंके द्वारा, इंद्रियकेंद्रोमेंसे गुजर कर मनकेपास पहुंचते हैं। यदि मन उनकेसाथ मिला होगा, तोही विषयका ग्रहण हो जाता है; नहीं तो नहीं। यदि मन आंखकेसाथ न मिला होगा, तो आंखके सामनेसे बडाभारी हाथी गुजर गया, तोभी उसका पता नहीं लगता। यह बात हरएकके अनुवभकी है इसलिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी जरूरत नहीं है। इसी युक्तिका उपयोग करके प्रत्याहारकी सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये।

मनका इंद्रियोंसे संयोगही न हुआ तो किसी विषयका प्रवेशही अंदर नहीं होगा। इसलिये इंद्रियोंसे मनको हटाकर उसको अंदरकी गुहामें ले जाना ही प्रत्याहार है। ऐसा अभ्यास करनेसे मनकी

शक्ति बढ जाती है। यह अभ्यास वारंवार करना आवश्यक है और यह अत्यंत कठिनभी है। सदा सर्वदा मन इंद्रियोंका गुलाम रहता है, उसको पूर्वोक्त रीतिसे इंद्रियोंका अधिपति बनाया जाता है। यह आधिपत्य सिद्ध होनेसे मनकी आज्ञाके अनुसार इंद्रियां कार्य करने लग जातीं हैं। इस अवस्थामें अपनी शक्तिका अनुभव आजाता है।

इंद्रियोंका संचालक मन और मनका संचालक आत्मा है। यदि हम इंद्रियोंसे मनको अलग कर सकेंगे तो इंद्रियोंके तथा शरीरके कष्टोंसे हमें दुःख नहीं होगा। मानस–चिकित्सा का यही मूल है इस प्रकार मनको अलग अनुभव करनेके अभ्याससे शारीरिक दुःखोंकी संवेदना मनमें नहीं रहतीं, और मन स्वास्थ्यके विचारोंसे परिपूर्ण रहता है। मनके स्वास्थ्यपूर्ण विचारसे शरीरपर परिणाम होकर शरीर भी शीघ्रही आरोग्य संपन्न होजाता है। जिसका मन स्वाधीन नहीं है, उसपर इसके विरुद्ध परिणाम होता है इसका कारण स्पष्टही है।

कई लोग यहां प्रश्न पूछेंगे कि बाह्य इंद्रियां बंद रखनेसेभी विषयमें मन फंसेगा नहीं। परंतु उनको स्मरण रहे कि सदाके लिये आंख बंद रखनेसे न केवल आंखकी शक्ति निर्बल होगी, प्रत्युत उतना मनभी निर्बल होगा। इसी प्रकार इंद्रियोंको अधिक बंद करनेसे मनभी अधिक निःशक्त होगा। योगको मनकी शक्ति कम करनी नहीं है, प्रत्युत बढानी है। इसलिये किसीभी इंद्रियको बलात्कारसे बंद रखना उचित नहीं है प्रत्युत उनको खुला रख करही मनकी शक्ति बढाते हुए प्रत्याहारसे सबकी शक्ति बढानी

चाहिये । शक्तिकी वृद्धि होनी आवश्यक है, परंतु उनकी स्वैर वृत्तिकाही निषेध करना है ।

कितनेभी आघात बाहरसे होते रहे, तथापि मनके अंदर खिलबिली मचनी नहीं चाहिये । इस प्रकार मन धैर्य और गंभीरतासे युक्त होना आवश्यक है । मनके साथ संपूर्ण अंतर्बाह्य इंद्रियोंका विकास करना, आज्ञा चक्रके स्थानमें जो " तृतीय नेत्र " है उसकी शक्ति वृद्धिंगत करनी और सहस्रदल कमलमें जो " **चिंतामणि** " है उसकी शक्तिका विकास करना योगको अभीष्ट है । तात्पर्य शक्तिको कम करनेका विचार यहां नहीं है, प्रत्युत शक्तिका विकास करना है; और परतंत्रताके स्थानपर स्वतंत्रता सिद्ध करना योगका साध्य है । यह प्रत्याहारके अभ्याससे सिद्ध हो सकता है ।

जिस प्रकार कछुवा अपने पांव सिकोडकर अंदर लेता है, ठीक इस प्रकार मनकी सब शक्तियां इंद्रियोंसे सिकोडकर मनके अंदर लानेका यत्न करनेसे प्रत्याहार सिद्ध हो सकता है । जब आवश्यकता हो तभी विशेष इंद्रियका उपयोग करना, तब तक संपूर्ण शक्तियोंको मनमेंहि स्थिर करनेका अभ्यास करनेसे मनःशक्तिका विकास होता है, क्योंकि ऐसा करनेसे मनकी शक्ति किसी इंद्रिय द्वारा व्यर्थ खर्च नहीं होती, और जलसे भरपूर तालावके समान यह " **मानस-सरोवर** " भी अपनी शक्तिसे भरपूर रहता है । यदि इस शक्तिका उपयोग तृतीय नेत्रके खोलने और चिंतामणिको उज्वलित करनेके कार्यमें दृढ निश्चयके बलसे किया जाय, तो सिद्धिमें विलंब नहीं लगेगा । उच्च शक्तिका विकास करनेका यही एक मात्र उपाय है ।

प्रत्याहारसे इंद्रिय निग्रह, मनः संयम अर्थात् शम दम सिद्ध होनेके कारण योगी का मन निर्मल हो जाता है। इसलिये उसकी वृत्ति सदा प्रसन्न रहती है। संपूर्ण इंद्रियां और अवयव स्वाधीन होनेकी अवस्थामें वह पुरुष सदाचारी रहता है। उसको अपनी आत्मशक्तिका पता लग जाता है, अत एव एक प्रकारकी बंधमुक्त स्वातंत्र्यकी अवस्था उसको प्राप्त होती है।

मन और संपूर्ण इंद्रियोंका निग्रह होना यह एक बडा भारी तप ही है। इस तपसे जो तपस्वी होता है उसका तेज फैलने लगता है। दीनता का नाश होता है। "मैं दीन नहीं हूं" यह अनुभव उसको इस समय हो जाता है। वास्तवमें आत्माही शक्तिका केंद्र है, वह दीन कैसे हो सकता है! परंतु जो गुलामी उसमें इंद्रियोंकी दासताके कारण आगई थी, वह प्रत्याहारसे दूर हो गई, और अब उसको अपनी शक्तिका पता लगा है!!! जब यह अनुभव आ लगता है, तत्पश्चात् धारणा ध्यान समाधिमें उसका "द्रुत प्रवेश" अर्थात् शीघ्र गति हो जाती है। और आत्मसाक्षात्कारका मार्ग निष्कंटक हो जाता है।

इस प्रकार प्राणायाम प्रत्याहारका विचार है। इसका यथा योग्य आचरण करनेसे बहुतही लाभ होत हैं। उनका थोडासा और अत्यंत संक्षेपसे वर्णन ऊपर कियाही है, आशा है कि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे, और अपना मार्ग आक्रमण करनेके विचारमें दत्तचित्त होंगे। **जो प्रयत्न करेंगे उनको सिद्धि अवश्य मिलेगी।**

विषयसूची ।